साहसी गाथाएं

भारतीय नारियों की कहानियां

विनोद बाला शर्मा



सामयिक प्रकाशन

भूमिका

बच्चे सहज बुद्धियुक्त होते हैं। मैंने मनोवैज्ञानिक ढंग से बच्चों के समीप रहकर उनकी भावना को परखने का यत्न किया है। उस आधार पर यह यथार्थ है कि आरम्भ में बच्चों को यदि शिक्षाप्रद सशक्त साहित्य पढ़ने हेतु दिया जाय तो वे योग्य बन सकते हैं। वर्तमान समय में बच्चों की बुद्धि के विकास के लिए हमें पहले सोचना है और उन्हें देश का ऐसा भावि नागरिक बनाना है जिससे भारत का भविष्य उज्ज्वल हो सके।

इस पुस्तक की लेखिका विनोद बाला शर्मा ने बच्चों की बुद्धि के विकास हेतु जो कहानियाँ लिखी हैं वे बच्चों के लिए अत्यधिक उपयोगी है। इस पुस्तक के पढ़ने से ज्ञात होता है कि भारत में जहाँ वीरों ने अपनी देश भक्ति का परिचय दिया है वहाँ वीरांगनाएँ भी पीछे नहीं हैं। बच्चों को ऐसी ही शिक्षापूर्ण कथाएँ पढ़ने के लिए दी जानी चाहिए। इसी भावना को लेकर बालिकाओं के लिए विनोद बाला शर्मा का यह कदम सराहनीय है। लेखिका को मैं उसके इस कार्य के लिए बधाई देता हूँ।

प्रस्तुत कृति 'साहसी गाथाएँ' बालक तथा बालिकाओं में देश-भक्ति की भावना का संचार करेंगी, मुझे पूर्ण विश्वास है।

शुभ कामनाओं सहित

१४३६ए/२८
बलवीर नगर
शाहदरा, दिल्ली—३२

—श्यामलाल 'मधुप'

क्रम-विषय

: १ :

महारानी दुर्गावती



बच्चो ! आज मैं तुम्हें भारत की उन वीर नारियों के विषय में बताऊँगी जिन्होंने अपनी मर्यादा को बनाए रखने के लिए अपने कर्तव्य का पूर्णरूप से पालन किया। अपने प्राणों की परवाह न कर जिन्होंने वीरता का परिचय दिया उनमें सबसे पहले मैं महारानी दुर्गावती का वर्णन करूँगी।

महारानी दुर्गावती कन्नौज के राजा चन्दनराय की एकमात्र पुत्री थी। राजा चन्दनराय की इच्छा थी कि उसकी पुत्री फूल-सी कली और लोह-सी बली बने। इसीलिए उसके पिता ने अपनी

पुत्री के लालन-पालन के लिए सभी प्रकार की सुविधाओं का आयोजन किया था। शिक्षा-दीक्षा का प्रबन्ध करने के बाद राजा चन्दनराय ने अपनी बेटी को हर गुण सम्पन्न देखना चाहा।

ऐसा ही हुआ। वीर पिता की वीर पुत्री किशोर हुई और तलवार, तीर-कमान, भाला आदि चलाने में वह निपुण हो गई। यह देख राजा चन्दनराय को बहुत प्रसन्नता हुई।

जब दुर्गावती हर गुण सम्पन्न हुई उसके पिता ने चाहा कि अपनी पुत्री का विवाह भी वीर व तेजस्वी युवक से होना चाहिए। अतः उन्होंने ऐसे ही वर की तलाश करनी शुरू कर दी।

उधर गोंडवाना के राजा दलपतिशाह की वीरता की कहा-नियाँ दूर-दूर तक फैली हुई थी। जब उसकी वीरता की चर्चा कन्नौज के राजमहल में हुई दुर्गावती बहुत प्रभावित हुई और उसने मन-ही-मन दलपतिशाह को अपना पति स्वीकार कर लिया।

राजा चन्दनराय को अपनी बेटी की भावनाओं का जब पता लगा वे रुष्ट हुए। उन्हें यह अच्छा न लगा कि उसकी बेटी दलपतिशाह को अपनी इच्छा से वर स्वीकार करे। वे गोंडवाना के राजा से अपनी पुत्री का विवाह करना नहीं चाहते थे। अतः उन्होंने एक राजपूत राजकुमार से दुर्गावती का विवाह कर देने का निश्चय कर लिया।

दुर्गावती को जब यह पता लगा वह बड़ी दुःखी हुई। अपने पिता से कुछ कहने में वह असमर्थ थी अतः रात-दिन उसी चिन्ता में रहने लगी।

उधर दलपतिशाह को जब ज्ञात हुआ कि दुर्गावती उसे अपना पति स्वीकार कर चुकी है और पिता उसकी इच्छा के विरुद्ध कहीं और शादी कर देना चाहता है तो उसे बहुत बुरा

लगा और उसने दुर्गावती का पाणि-ग्रहण करने के लिए एक बड़ी फौज लेकर कन्नौज पर चढ़ाई कर दी।

राजा चन्दनराय को स्वप्न में भी ऐसी आशा न थी। दलपतिशाह की सेना के हमला करते ही राजा चन्दनराय ने उसका डटकर मुकाबला किया। भयंकर युद्ध हुआ और अन्त में राजा चन्दनराय को हार माननी पड़ी।

जीत कर राजा दलपतिशाह गोंडवाना पहुँचे। बाजे-गाजे के साथ विजय दुन्दुभी बजा कर उनका भव्य-स्वागत किया गया। वहीं उन्होंने विधि-पूर्वक दुर्गावती से विवाह कर लिया।

समय व्यतीत होता गया। दलपतिशाह और दुर्गावती गृहस्थ-जीवन सुख से बिताने लगे।

दुर्गावती ने एक पुत्र को जन्म दिया। राजमहल में खुशियाँ मना गईं। बड़े प्यार से राजा दलपतिशाह ने अपने पुत्र का नाम वीर नारायण रखा। युवराज का पालन-पोषण अच्छी तरह से किया जाने लगा।

युवराज जब तीन वर्ष के हुए, दुर्भाग्यवश पिता का साया उसके ऊपर से हट गया। अपने नादान बालक को छोड़ एक दिन दलपतिशाह स्वर्ग सिधार गये। दुर्गावती की खुशियों का बाग उजड़ गया। उसका सुहाग लुट गया और विधवा भेष धारण कर लिया।

पति की मृत्यु के बाद राज्य की बागडोर सम्भालने का प्रश्न दुर्गावती के सामने आया। उसने अपने तीन वर्ष के पुत्र वीर नारायण को राजा बनाकर राज्य की बागडोर अपने हाथ में सम्भाल ली और उसने राज्य का प्रबन्ध इस सुन्दर ढंग से किया कि चारों ओर अमन की बंशी बजने लगी। अब हर समय महारानी दुर्गावती अपने पुत्र और प्रजा के दुःख में ही

जीवन व्यतीत करने लगी। समस्त प्रजा उससे बहुत प्रसन्न थी।

उन दिनों मुगल सम्राट् अकबर की धाक दूर-दूर तक फैली हुई थी। उत्तरी भारत उसकी आधीनता में तरक्की कर रहा था। बादशाह अकबर की हार्दिक इच्छा थी कि छोटी-मोटी सभी रियासतों को अपने राज्य में मिला कर समस्त भारत पर मुगलिया झण्डा फहराया जाये।

गोंडवाना छोटी-सी रियासत थी। वहाँ के शासन तथा रानी की निपुणता की खबरें दूर-दूर तक फैल चुकी थीं। बादशाह के सरदारों ने महारानी दुर्गावती के बारे में बताते हुए उसके राज्य पर अधिकार कर लेने की उन्हें सलाह दी; किन्तु अकबर ने ऐसा करने से मना कर दिया। वे युद्ध से नहीं बल्कि सहानुभूति दर्शा कर उसके राज्य पर अधिकार कर लेने के पक्ष में थे।

अवसर पाकर एक दिन सूबेदार आसफ खाँ ने बादशाह को भड़काया। बादशाह पर उसकी नीति का प्रभाव पड़ा और उन्होंने पांच हजार घुड़ सवारों सहित आसफ खाँ को गोंडवाना पर आक्रमण करने के लिए भेज दिया।

आसफ खाँ गर्व से ऊँचा सर किये सेना लेकर गोंडवाना की ओर चल दिया। उसे विश्वास था कि छोटे-से राज्य की महारानी इतनी बड़ी फौज देखकर घबरा जायेगी और उसके सामने आत्म-समर्पण कर देगी। लेकिन ऐसा न हुआ। आसफखाँ को अपने राज्य पर हमला करते देख उसका खून खौल उठा। शेरनी की तरह गरज कर वह उठी और अपने राज्य की आजादी को भंग होते देख उसमें नयी शक्ति का संचार हुआ। उसने तुरन्त अपने सरदारों और फौजी अफसरों को एकत्र करके अपनी आन की रक्षा करने का अमर सन्देश दिया, जिससे प्रभावित होकर छोटे-से राज्य के मुट्ठी भर सैनिक

मातृभूमि की रक्षार्थ युद्ध के मैदान में कूद पड़े।

महारानी दुर्गावती भी आठ हजार सैनिकों के साथ रण-चण्डी का रूप धारण करके संग्राम में कूद पड़ी। दुर्गावती का तेजस्वी रूप और सेना का ओजस्वी तेज देख कर सूबेदार आसफ खाँ घबरा गया। उसने स्थिति को गम्भीर देख दिल्ली से कुमक मँगवाना चाहा; पर उसे सफलता न मिली। जब उसे और सहायता न मिली उसके पैर हिल गये और वह मैदान छोड़ कर भाग खड़ा हुआ।

महारानी की सिंहवाहिनी सेना ने शत्रु दल के दाँत खट्टे कर दिये। आसफ खाँ एक स्त्री के सामने मैदान छोड़ कर भागा। यह उसका बड़ा भारी अपमान था जिसे वह सहन न कर पा रहा था। उसने बादशाह अकबर के सामने नमक-मिर्च लगा कर सारा वृत्तान्त सुनाया।

फिर क्या था। अकबर को करंट-सा छू गया। एक औरत द्वारा दिल्ली के बादशाह के अपमान से मुगलों को गहरा धक्का लगा। अकबर मे बदले की भावना ने उग्र रूप धारण कर लिया और उसने एक बड़ी फौज के साथ आसफ खाँ को पुनः गोंडवाना पर आक्रमण करने के लिए भेज दिया।

आसफखाँ महारानी दुर्गावती की शक्ति को देख चुका था। उसे विश्वास था कि रानी के जीते-जी गोंडवाना पर अधिकार करना उसके लिए कठिन है। फिर भी उसने आक्रमण कर दिया। अबकी बार उसने चालाकी से काम लेना उचित समझा।

उसने कुछ देश-द्रोहियों से सम्पर्क बनाया। लालच देकर उसने उन्हें अपनी ओर मिला लिया। जब रानी को पता लगा उसे दुःख हुआ फिर भी उसने साहस से काम लिया। उसने अपने वीर सरदारों को एकत्र किया और अपने ओजस्वी

भाषण के साथ उसने कहा, 'वीर सैनिकों ! मातृभूमि अपनी रक्षा के लिए तुम्हें पुकार रही है। तुम्हीं उसके रक्षक हो। अपनी मातृभूमि की रक्षा के लिए जो वीर आगे आना चाहते हैं वह मेरे साथ युद्ध के मैदान में चलें।'

बस, फिर क्या था, सभी महारानी के साथ हो लिए। और महारानी अपने वीर सैनिकों सहित फिर युद्ध के मैदान में आ गईं।

एक ओर मुगलों का बड़ी सेना, दूसरी ओर गोंडवाना के थोड़े-से सिपाही। दोनों में भयंकर युद्ध छिड़ गया। महारानी अपने पुत्र के साथ घोड़े पर सवार होकर मुगलों के दाँत खट्टे करने लगीं।

घमासान युद्ध हुआ। आसफ खाँ को लगा जैसे अब की बार भी उसे मैदान छोड़ कर भागना होगा। अभी युद्ध हो रहा था। सूर्य अस्त होते-होते एकाएक अपनी मातृभूमि की रक्षा करते-करते महारनी दुर्गावती की आँख में एक तीर धँस गया। उधर उसका पुत्र भूमि पर गिर पड़ा। महारानी यह देख व्याकुल हो उठी। लेकिन उसी क्षण उसने अपने आपको सम्हाल लिया। कुछ सैनिक वीर नारायण को सुरक्षित स्थान पर ले गये।

महारानी दुर्गावती उसी तरह युद्ध के मैदान में मुगलों का मुकाबला करती रही। उधर उसके पुत्र की दशा चिन्ताजनक थी। सरदारों ने जब रानी से निवेदन किया कि वह अन्तिम बार अपने पुत्र का मुंह तो देख ले। लेकिन रानी ने साफ़ इन्कार करते हुए कह दिया कि इस समय मुगलों का मुकाबला करना है। अतः मैं युद्ध का मैदान नहीं छोड़ सकती। यदि मेरा वीर पुत्र वीर गति को प्राप्त हो रहा है तो इसका मुझे दुःख

नहीं है। यदि दुःख है तो बस इस बात का कि इस लोक में मैं उससे न मिल सकूंगी।

महारानी इतना कहकर रण-चण्डी की तरह विराट रूप धारण कर शत्रु की सेना को काट-काट कर पृथ्वी पर फेंकने लगी। भयंकर युद्ध के बीच रानी ने पूर्ण वीरता दिखाई और लड़ते-लड़ते जब वह थक गई अपनी ही तलवार से उसने अपना सिर काट लिया। क्योंकि वह जीवित मुगलों के हाथ नहीं पड़ना चाहती थी। शत्रुओं के अपवित्र हाथों में फँसने से अच्छा वह वीरांगना मरना अच्छा समझती थी।

युद्ध के मैदान में अपने प्राणों की परवाह न करती हुई महारानी दुर्गावती परलोक सिधार गई। मुगलों की सेना ने उसका शव अपने अधिकार मे लेना चाहा; किन्तु रानी के एक सच्चे सेवक ने दुर्गावती का शव अपने कब्जे में कर लिया था। वह उसे राजमहल ले आया।

एक बड़ी चिता बना कर माँ और पुत्र के शव का दाह-संस्कार कर दिया गया। सारा गोंडवाना महारानी दुर्गावती और उसके पुत्र की मृत्यु पर आँसू बहा रहा था। उधर आसफ खाँ युद्ध भूमि मे दुर्गावती की लाश ढूँढ़ रहा था। लेकिन उसे कुछ न मिला।

गोंडवाना खत्म हो गया। लेकिन इस वीर वीरांगना महारानी दुर्गावती का नाम भारत के इतिहास में हमेशा-हमेशा के लिए अमर हो गया।



: २ :

रानी सारन्धा

बच्चो ! रानी सारन्धा का नाम तो तुमने सुना होगा। भारत के इतिहास में जहाँ वीरांगनाओं का जिक्र आता है वहाँ वीर रानी सारन्धा का नाम भी स्वर्ण अक्षरों में लिखा हुआ है। इस वीर रानी ने अपनी आन के लिए जिस वीरता का परिचय दिया वह हमेशा उसकी याद दिलाता रहेगा।

अब तुम यह जानना चाहोगे यह वीरांगना कहाँ की रानी थी। लीजिए, मैं इसके बारे में सब कुछ बता देती हूँ।

हाँ, तो सारन्धा बुन्देलखण्ड के छोटे-से राज्य ओरछा के राजा चम्पतराय की स्त्री थी। इसके भाई का नाम अनिरुद्ध-सिंह था। वह बुन्देलखण्ड के छोटे-से पहाड़ी इलाके के राजा थे।

बचपन से सारन्धा में वीरता की भावना कूट-कूट कर भरी थी। वह किसी की गुलाम न रह कर स्वतन्त्र रहना अधिक पसन्द करती थी।

जब सारन्धा युवा हुई अनिरुद्धसिंह ने उसके विवाह के लिए वर की तलाश करनी आरम्भ कर दी। उन्हीं दिनों ओरछे के राजा चम्पतराय की वीरता की धाक दूर-दूर तक जमी हुई थी। यद्यपि राजा चम्पतराय के कई रानियाँ थीं फिर भी सारन्धा का विवाह उससे कर दिया गया।

चंपतराय सारन्धा को बहुत प्यार करने लगा। उस समय



वह गद्दी पर नहीं बैठा था ।

कुछ समय बाद चंपतराय गद्दी पर आसीन हुए । उन्होंने गद्दी पर बैठते ही मुगलों को कर देना बन्द कर दिया । वे नहीं चाहते थे कि अपने राज्य की सम्पत्ति मुगलों को लुटाई जाये । इससे मुगल उससे नाराज हो गये, किन्तु उसने कोई परवाह न की ।

उन दिनों शाहजहां मुगलो का बादशाह था उसने चंपतराय को ऐसा करते देख उस पर आक्रमण किया । मुगलों की फौज का उसने डट कर मुकाबला किया । उसमें मुगलों को हार माननी पड़ी । उसके बाद चपतराय ओरछे का शासन अपने भाई के हाथ में सौंप स्वय दिल्ली चला आया ।

चंपतराय के दिल्ली आने पर शाहजहां ने उसका स्वागत किया । अब तुम यह सोचोगे मुगलों ने उसका स्वागत क्यों किया ? बच्चों ! यह शाहजहां की एक चाल थी । उसकी

वीरता को देख उसने अपना स्वार्थ सिद्ध करना चाहा। मतलब यह है कि कुम्हारगढ़ के किले पर वह अपना झण्डा फहराना चाहता था।

जब शाहजहाँ ने कुम्हारगढ़ को जीतने का प्रस्ताव चंपतराय के सामने रखा वह तैयार हो गया और उसने मुगल सेना के साथ कुम्हारगढ़ के किले पर चढ़ाई कर दी। मुगल सेना की जीत हुई। उस समय प्रसन्न होकर बादशाह ने नौ लाख रुपये की वार्षिक जागीर चंपतराय को पुरस्कार के रूप में दे दी।

चंपतराय को अब किस बात की चिन्ता थी। वह अपनी इच्छानुसार आनन्द से जीवन व्यतीत करने लगा। सारन्धा को यह अच्छा न लगा। वह मुगलों के ऐसे उपकार से घृणा करती थी। वह स्वतन्त्रता से जीवन बिताने के पक्ष में थी। इसीलिए पति के इस ढंग को देख कर वह हमेशा बेचैन रहने लगी।

एक दिन चंपतराय ने उसे उदास देख उससे इसका कारण पूछा तो उसने उत्तर दिया, 'वीर कभी किसी की गुलामी सहन नहीं कर सकता! एक समय था जब मैं एक राजा की रानी थी, किन्तु आज एक मुगल बादशाह की सेविका हूँ।'

'रानी! तुम यह क्या कह रही हो?' चंपतराय ने पूछा।

उसने कहा—'मैं जो कह रही हूँ वह ठीक है। आप विलासिता में पड़कर अपने धर्म और कर्त्तव्य को भूल बैठे हैं। आप में एक राजपूत का खून है। उस राजपूत का जो अपनी आन के लिए अपना खून बहा देता है लेकिन किसी के सामने अपना सिर नहीं झुकाता। वह भी राजपूती खून है जो अपनी मर्यादा के लिए मिट जाते हैं और एक आप हैं जो मुगलों की नौ लाख की जागीर के लालच में फँस कर बुन्देलों की आन को धब्बा

लगा रहे है। उन नन्हें-नन्हें बच्चों का खून होता देख रहे हैं जिन्हें बड़े होकर अपनी मातृ-भूमि की रक्षा करती है। मैं पूछती हूँ क्या यही आपका धर्म है? क्या आपका कर्तव्य यही कहता है आपसे? क्या एक वीर अपनी मातृ-भूमि पर कलंक लगते देख सकता है?

रानी सारन्धा की इन बातों का चंपतराय पर गहरा प्रभाव पड़ा। उसकी आँखें खुली और तब उसे ज्ञात हुआ उसने जो किया अनुचित है और देश व धर्म के प्रति उठती हुई भावनाओं ने उसमें नई रोशनी का संचार किया तो उसने मुगलों का विरोध करना आरम्भ कर दिया।

शाहजहाँ के पुत्र दारा ने चम्पतराय को अपने विरुद्ध देखा तो उसने अपने पिता द्वारा दी गई नौ लाख की जागीर वापिस ले ली। चम्पतराय यह अपमान सहन न कर सका। और वह ओरछे वापिस लौट आया।

ओरछे आकर चम्पतराय में जो ज्वाला भड़क रही थी वह उग्ररूप धारण कर गई। और उसने मुगलों से बदला लेने का फैसला कर लिया। दारा से अपने अपमान का बदला लेने की योजना उसने बनानी शुरू कर दी।

उन्हीं दिनों दारा और औरंगजेब के बीच युद्ध छिड़ गया। जब औरंगजेब को ज्ञात हुआ चम्पतराय दारा से बदला लेना चाहता है उसने उससे सहायता माँगी। चम्पतराय तैयार हो गया। और उसकी सहायता से औरंगजेब ने दारा को परास्त कर दिया। इस युद्ध में रानी सारन्धा ने भी अपनी वीरता का अनोखा परिचय दिया था।

औरंगजेब चम्पतराय से बहुत खुश हुआ। उसने राज्य का कुछ भाग चंपतराय को दे दिया। चंपतराय फिर खुशी से

जीवन बिताने लगा लेकिन रानी सारन्धा को इसकी कोई खुशी न थी। वह तो और भी कुढ़ने लगी। इसकी चिन्ता बढ़ती गई। वह नहीं चाहती थी कि मुगलों के वे आधीन रहें। क्योंकि वह स्वतन्त्र-प्रिय थी। किसी के आधीन रहकर जीवन बिताना उसे अच्छा न लगता था। इसलिए कि वह राजपूतानी थी। उसमें राजपूती खून था। वह वीर थी स्वयं रणक्षेत्र में कूदकर दुश्मनों का सामाना करने को तत्पर रहती थी। ऐसी ही एक घटना है वीर रानी सारन्धा की। लो बच्चो ! वह घटना भी तुम्हें सुना दूं।

एक बार जब दारा युद्ध का मैदान छोड़कर भाग गया था उस समय उसका सेनापति वली बहादुर घायल अवस्था में औरंगजेब की हिरासत में आ गया था। कुछ समय बाद और-गंजेब ने उसे अपनी सेना का नायक बना लिया था। उसका प्यारा घोड़ा चम्पतराय ने अपने अधिकार में ले लिया था।

एक दिन की बात है चंपतराय का पुत्र उसी घोड़े को लेकर घूमने निकला कि वली बहादुर की उस पर दृष्टि पड़ गई। उसने घोड़े को पहिचान लिया। अवसर पाकर उसने लड़के से घोड़ा छीन लिया। लड़का रोता हुआ अपनी माँ के पास पहुँचा। सारन्धा को जब यह पता लगा कि वली बहादुर ने उस घोड़ा छीन लिया तो वह पहले अपने बेटे पर गरजी। उ बुरा भला कहा और फिर अपमान का बदला लेन के लिए त वार हाथ में लिए वह दरबार में जा पहुँची।

उसे हाथ में नंगी तलवार लिये देख सभी हैरान थे।

रानी ने शेरनी की तरह गरजकर कहा—'अरे डरपो तुझे कौन वली कहता है। एक नादान बच्चे के हाथ से छीनना ही क्या तेरी बहादुरी है। आ, यदि बहादुरी दिखा तो सामने आ।'

रानी के इतना कहते ही मुगलों की तलवारें खनक उठीं। औरंगजेब यह देख चकित रह गया। उसने रानी से पूछा—"यह घोड़ा वली बहादुर का है तुम उसे क्यों लेना चाहती हो?"

'अपनी मान मर्यादा के लिए।' रानी ने गरज कर उत्तर दिया। पुन: बोली—'राजपूत अपनी आन के लिए जान भी कुर्बान कर देते हैं इस तरह कायर बनकर किसी वस्तु पर अधिकार नहीं करते।'

औरंगजेब ने कहा—'हम वह घोड़ा तुम्हें एक शर्त पर लौटा सकते हैं।'

'वह क्या?' रानी ने पूछा।

'हमारी दी हुई जागीर तुम्हें लौटनी पड़ेगी।'

और औरंगजेब द्वारा दी गई जागीर उन्होंने लौटा दी। अन्त में चम्पतराय रानी और अपने पुत्र सहित ओरछे चले गये। औरंगजेब को यह अच्छा न लगा। चम्पतराय को उसकी रानी का अभिमान चूर करने के लिए उसने बुंदेलखण्ड पर आक्रमण करने के लिए सेना भेज दी।

जब चम्पतराय और सारन्धा को औरंगजेब के व्यवहार का पता लगा उन्होंने मर मिटने की ठान ली। मुगलों की सेना का उन्होंने डटकर मुकाबला किया। अन्त में मुगलो की जीत हुई।

हार कर चंपतराय और सारन्धा सहरा के जमीदार इन्द्रमणि के यहाँ पहुँचे। वे मुगलों के हाथों मरना नहीं चाहते थे। लेकिन वहाँ भी मुगलों की सेना ने उन्हें घेर लिया।

सहरा में भीषण युद्ध हुआ। इन्द्रमणि उस युद्ध मे मौत का का शिकार हो गया। आखिर सहरा छोड़ वे अन्य स्थान के लिए भागे, लेकिन रास्ते मे मुगलो की फौज ने उन्हें घेर लिया। उस दिन चंपतराय बीमारी की दशा में था अत: दुश्मनों का सामना करना उसके लिए कठिन हो रहा था।

आखिर चंपतराय को चक्कर आ गया और वह पृथ्वी पर गिर पड़ा। रानी सारन्धा ने अपने पति की दशा देखी। उसने उसे सहारा दिया। मुगल सेना समीप आती जा रही थी। चंपतराय यह देख घबराया और बोला—'रानी ! तुम मेरे सीने में तलवार घोंप दो। मैं जिन्दा इन मुगलों के हाथों नहीं पड़ना चाहता।'

इतना कहते ही रानी सारन्धा ने अपने पति की छाती में तलवार घोंप दी। मुगल सेना समीप आ चुकी थी। उसे देख वह चिल्लाई—'हमारी लाश हमारे पुत्रों को सौंप देना।' और इतना कह कर रानी ने स्वयं को भी पति के मार्ग का साथी बना लिया।

मुगल सेना को हाथ लगा उन का शव। वाह ! धन्य है वीर सारन्धा, जिसने अपनी मान रक्षा के लिए ऐसा महान् त्याग किया जिसे भारतीय इतिहास कभी न भूल सकेगा। ऐसी-ऐसी वीर नारियों ने अपना ही नहीं सारे देश का गौरव बढ़ाया है।



: ३ :

हाड़ी रानी–२



तुम में से बहुत से ऐसे होगें जिन्होने हाड़ी रानी के विषय कुछ सुना होगा। हो सकता है इस रानी के बारे में पूरी ानकारी न हो। मैं यहां इस रानी के जीवन की ऐसी घटनाओं ा वर्णन करूंगी जिन्हें पढ़कर तुम यह समझ सकोगे कि हाड़ी नी ने किस प्रकार वीरता का परिचय देकर भारतीय नारियों ा नाम उज्जवल किया है।

हाड़ी रानी मेवाड़ के वीर सरदार चूड़ावत की पत्नी थी।

वीर चूड़ावत उदयपुर के राणा राजसिंह के यहाँ सरदार था। वह बड़ा वीर पराक्रमी और युद्ध नीति में कुशल था।

एक बार की घटाना है रूपनगर की राजकुमारी चंचल राणा राजसिंह को अपना वर चुन चुकी थी, और बादशाह औरंगजेब चंचल कुमारी की सुन्दरता पर मुग्ध होकर उससे जबरदस्ती विवाह करना चाहता था। जब चंचल कुमारी को औरंगजेब की नीति के विषय में पता चला उसने तुरन्त राजसिंह के नाम एक पत्र लिखा और अपने दूत को देती हुई बोली, 'जाओ, राणा को मेरा यह पत्र देना और कहना कि चंचल कुमारी अपने सतीत्व की रक्षा के लिए आपकी सहायता चाहती है, और उसने साथ ही दूत को एक माला अपनी ओर से राजसिंह को भेंट करने के लिए दी।

राणा राजसिंह चंचल कुमारी का पत्र पाकर एक बार चकित हुए। फिर पत्र को पढ़कर उसके हृदय में तूफ़ान-सा उठ खड़ा हुआ। औरंगजेब के व्यवहार से उसका खून खोल उठा था। एक मुगल राजपूतों की आन को कलंकित करे यह वह कैसे देख सकता था। वह आवेश से बड़बड़या—'चाहे कुछ भी हो मैं चंचल कुमारी से शादी करूँगा। वह मुझे अपना पति स्वीकार कर चुकी है।'

दरबार के सरदार कुछ क्षण चुप रहे। वे जानते थे कि औरंगजेब की विशाल व शक्तिशाली सेना से टक्कर लेना कोई आसान काम न था। जब सरदारों ने मुगल फौज के बारे में जिक्र किया तो चूड़ावत गरजकर उठा और बोला—'औरंगजेब के नाम से सभी के चेहरे पीले क्यों पड़ गये? क्या राजपूतों के नाम को तुम लोग बट्टा लगा देना चाहते हो? हम राजपूत हैं। हमारा धर्म अपनी आन की रक्षा करना है।'

और उसने दरबार में प्रतिज्ञा करते हुए पुनः कहा—'राणा

जी ! मैं प्रतिज्ञा करता हूँ जब तक आप रूपनगर से चंचल कुमारी को विवाह कर न लौट आयेंगे मैं तब तक औरंगजेब को एक इंच भी आगे नहीं बढ़ने दूंगा।

बस फिर क्या था। वीर सरदार की प्रतिज्ञा सुनकर सभी के चेहरे खिल उठे। सरदारों की निराशा आशा में परिवर्तित हो गई और वे औरगंजेब की विशाल सेना से टक्कर लेने को तैयार हो गये।

राणा जी रूपनगर की ओर जा चुके थे। चूड़ावत अभी तक यहीं था। वह औरगंजेब की सेना का मार्ग रोकने की तैयारी करने के बाद घोड़े पर सवार हुआ। जैसे ही वह घोड़े पर सवार हो महल के समीप से गुजरा एकाएक उसकी दृष्टि हाड़ी रानी पर पड़ी। वह ठिठक गया। घोड़े से उतरा। अपनी रानी को देख उसमें प्रेम की भावना उमड़ आई थी। प्रेम ने उसे अपने पथ से विचलित करने का यत्न किया। चूड़ावत से रहा न गया। अपनी नव-वधु को देख वह उसके पास पहुँचा।

चूड़ावत का अभी विवाह हुआ था। नववधु जिसके हाथ का कङ्गन अभी खुला भी न था अपने पति को युद्ध में जाते देख तनिक भी विचलित नहीं हुई। लेकिन चूडावत को चिन्ता थी कि उसके मरने के बाद उसकी वधु का क्या हाल होगा।

हाड़ी रानी ने पति को व्याकुल स्थिति में देखा। उसने धैर्य से काम लिया। अपने पति को अपने प्रेम में फँसे देख वह बोली, प्राणनाथ ! वीर पुरुष हमेशा सत्य और न्याय की रक्षा के लिए अपने प्राणों पर खेला है। अपनी आन के लिए हमेशा उसने युद्ध के मैदान में दुश्मनों को परास्त किय है। वीर पुरुष मिट जाता हैं; किन्तु कभी अपना सिर नहीं झुकाता और आप हैं जो प्रेम के जाल में फँसकर अपना कर्त्तव्य भूल रहे हैं। आपको

यह शोभा नहीं देता। आप मेरी परवाह न करके युद्ध के मैदान में जाइए। राणा को दिये गये अपने वचन का पालन कीजिए। चंचल कुमारी भी मेरी वहन है। उसके सतीत्व की रक्षा कीजिए नहीं तो नारी जाति का गौरव हमेशा-हमेशा के लिए समाप्त हो जायेगा।'

अपनी नव-वधु के शब्दों को सुन चूड़ावत में उत्साह का लहर दौड़ गई और अपनी पत्नी को अन्तिम नमस्कार करके वह औरंगजेव की विशाल सेना से टक्कर लेने चल दिया। वस, एक चिन्ता थी उसे और वह थी शायद मेरे मरने के वाद हाड़ी रानी अपने धर्म-कर्त्तव्य का पालन कर भी सकेगी या नहीं। यही सोचकर उसने अपनी पत्नी की परीक्षा लेनी चाही।

चूड़ावत ने अपने एक सेवक को वुलाया और कहा—'जाओ रानी से कहना कि चूड़ावत तुम पर अटल विश्वास रखने के लिए कोई निशानी चाहता है जिससे उन्हें यह सन्तोष हो कि उनके मरने के वाद भी तुम अपने धर्म-पथ पर डटी रहोगी।'

अपने सरदार की आज्ञा पाकर सेवक हाड़ी रानी के पास पहुँचा। उसने चूड़ावत के शब्द ज्यों-के-त्यों उसे कह सुनाये। हाड़ी रानी को दुःख हुआ, यही कि नाशवान शरीर के मोह में फँस कर एक वीर पुरुष अपने कर्त्तव्य को भूल रहा है।

हाड़ीरानी ने एक वार सेवक की ओर देखा फिर कुछ क्षण सोचने के वाद वोली—यदि ऐसा ही है तो मैं अपना सिर काट कर उन्हें भेंट करती हूँ। जाकर उन्हें कह देना कि हाड़ी रानी अपने कर्त्तव्य का पालन कर चुकी। अव आप अपने कर्त्तव्य का पालन करें।

इतना कह कर रानी के दाहिने हाथ में तलवार चमक उठी और क्षण भर में ही वीर नारी का सिर धड़ से अलग

हो गया।

यह देख कर सेवक काँप उठा। उसने रानी का सिर अपने हाथों मे उठाया और डगमगाते कदमों के सहारे वह चूड़ावत की ओर चल दिया।

ज्यों ही सेवक ने चूड़ावत के सामने रानी का सिर रखा उसकी आँखें फटी-की-फटी रह गईं। उसका हृदय काँप उठा। होंठ फड़फड़ाये। बोला—"यह क्या है सेवक"

सेवक की आँखें आँसुओं से तर थी। वीर रानी का सिर चूड़ावत के हाथ में देते हुए उसने कहा—"लीजिए, विश्वास की निशानी। रानी अपना धर्म-कर्त्तव्य पूरा कर चुकी। अब आप अपना कर्त्तव्य पूरा कीजिए।"

उसी क्षण चूड़ावत की आँखों से आँसू की दो बूंदें हाड़ी रानी के शीश पर टपक पड़ीं। वह पश्चाताप करने लगा। और उसी समय उसमें कर्त्तव्य की भावना ने उग्र रूप धारण कर लिया। उसने अपनी प्रिय पत्नी का सिर गले मे लटका लिया और युद्ध के मैदान मे कूद पड़ा।

बादशाह औरंगजेब और सरदार चूड़ावत में भीषण युद्ध हुआ। अन्त में औरंगजेब को हार माननी पड़ी। उस समय राणा जी चंचल कुमारी के साथ उदयपुर लौट चुके थे।

चूड़ावत ने औरंगजेब से वचन लिया कि वह कभी भी मेवाड़ पर आक्रमण नहीं करेगा। और जैसे ही चूड़ावत वापिस लौटा, मुगल सेनापति ने उसका सिर धड़ से अलग कर दिया। चूड़ावत वीरगति को प्राप्त हुआ।

ऐसी थी वीर वीरांगना हाड़ी रानी जिसने अपने पति को कर्त्तव्य पथ से तनिक भी विचलित नहीं होने दिया। मोह को

छोड़ जिसने अपना सिर काट कर पति को भट कर दिया। ऐसी वीर नारियों के आदर्श की कहानी सदैव हमें उन्नति का मार्ग दिखाती रहेंगी। ऐसी नारियों का महान् त्याग सदैव के लिए अमर रहेगा। भारत का इतिहास इन्हें कभी नहीं भूल सकता।

: ४ :

पन्नाधाय



बच्चो ! अब तुम्हें एक ऐसी नारी की कहानी सुनाऊँगी जिसने अपनी आँखों के सामने अपने पुत्र का खून होते देखा; किन्तु उसने उफ़ तक न की। क्योंकि वह जानती थी यदि उसने आँसू बहाये तो गुहिल-वंश का सर्वनाश हो जायेगा।

हाँ, तो बच्चो ! वह थी वीर नारी पन्नाधाय। मेवाड़ के गुहिल-वंश की धाय जो बच्चों का पालन-पोषण करती थी।

वह पक्की स्वामी भक्त थी। करुणावती उससे बहुत स्नेह करती थी। महारानी करुणावती ने एक दिन अपने पुत्र उदयसिंह को बूंदी भेज स्वयं को चिता के सुपुर्द कर दिया था। माँ का प्यार लुट जाने के बाद उदयसिंह का पालन-पोषण पन्ना ने किया। उसने उसे माँ का प्यार दिया। अपने छ: वर्षीय पुत्र से भी अधिक वह उदयसिंह का ध्यान रखती थी। क्योंकि वह चाहती थी बड़ा होकर उदय गुहिल-वंश का नाम उज्ज्वल करे।

उन दिनों चित्तौड़ में राजा विक्रमादित्य राज्य करता था। वह सदा भोग-विलास में डूबा रहता था। इससे पहले वह चित्तौड़ का शासन गँवा चुका था। लेकिन हुमायु ने उसे चित्तौड़ फिर से दिलवा दिया था। इतना होने पर भी उसने अपने आचरण को बदल न सका। उसके आचरण से सभी सरदार रुष्ट थे। क्योंकि वे जानते थे यदि राजा ने अपना आचरण न बदला तो एक दिन चित्तौड़ का शासन समाप्त हो जाएगा।

हुआ भी ऐसा ही। चितौड़ की बिगड़ती हुई दशा देखकर एक दिन बनवीर ने उस पर आक्रमण कर दिया। विक्रमादित्य हार गया और बनवीर ने चित्तौड़ की गद्दी पर अधिकार कर लिया।

उन दिनों उदयसिंह चित्तौड़ में था। जब बनवीर को ज्ञात हुआ कि गोहिल-वंश का चिराग अभी जीवित है उसमें स्वार्थ की भावना ने भयंकर रूप धारण कर लिया। वह जानता था अगर उदयसिंह जीवित रहा तो एक दिन राज्य की बागडोर उसके हाथ से निकल जाएगी। इसलिए उसने गुहिल-वंश के चिराग को हमेशा-हमेशा के लिए बुझा देने का निश्चय कर लिया।

बनवीर का व्यावहार दानवों का-सा था। सभी उसकी आदत से परिचित थे। लेकिन सब चुप रहकर उसके कुटिल

व्यवहार को सहन करते रहे। लेकिन किसी को ऐसी आशा न थी कि वह ऐसा कुकृत्य कर सकेगा जो एक रात उसने कर दिखाया।

एक दिन रात की घटना यों है।

चारों ओर रात का सन्नाटा छाया हुआ था। रात अन्धकार में डूबी भयंकर रूप धारण किये हुए थी। बनवीर ने ऐसे अवसर से लाभ उठाना उचित समझा।

रात को वह अपने पलंग से उठा। हाथ में तलवार ली और धीरे-धीरे विक्रमादित्य के कक्ष की ओर बढ़ा।

विक्रमादित्य सो रहा था। बनवीर आवेश पूर्वक आगे बढ़ा और निर्दयता के साथ उसने विक्रमादित्य का वध कर दिया। यकायक रात का सन्नाटा टूट गया। राजमहल में रोने-धोने की आवाज गूँजने लगी।

पन्ना जो अभी तक उदयसिंह के पलंग के पास बैठी थी राजमहल से रोने की ध्वनि सुन काँप कर रह गई। उसका दिल धड़कने लगा। उसे विश्वास हो गया कि बनवीर ने विक्रमादित्य का खून कर दिया है। अब वह उदयसिंह को कभी जिन्दा न छोड़ेगा। कुछ क्षण वह उसी तरह सोचती रही कि क्या करूँ। लेकिन उसकी समझ मे कुछ न आ रहा था।

वह विक्रमादित्य की हत्या का अनुमान लगाती हुई कुछ सोच ही रही थी कि इतने मे बारी ने आकर घबराई स्थिति से कहा—'अनर्थ! घोर अनर्थ! बनवीर ने विक्रमादित्य को कत्ल कर दिया। अब वह तेजी से इस ओर आ रहा है।'

पन्ना घबरा उठी। उसके हृदय की गति और तेज हो गई। होंठ फड़ फड़ाये, बोली—'अब क्या होगा? वह उदयसिंह को कभी जीवित न छोड़ेगा। क्या उदय का भी खून हो जायेगा? क्या गुहिल-वंश का सूर्य सदा-सदा के लिए अस्त [illegible]

नहीं, ऐसा कदापि न होने दूँगी। अपना खून देकर मैं उदय के प्राणों की रक्षा करूँगी।

और तब पन्ना अन्दर से एक टोकरा उठा लाई। नादान उदय को उसने उसमें छुपा दिया और बारी से बोली—'जाओ, जल्दी करो। इसे छुपाकर यहाँ से चित्तौड़ की सीमा से बाहर ले जाओ। कहीं ऐसा न हो बनवीर ज़ालिम इसे भी···।'

बस उसने इतना ही कहा था कि बारी ने टोकरा उठाया और तेजी से बाहर चला गया। जब बारी चला गया, पन्ना ने सन्तोष की साँस ली।

अभी वह सोच ही रही थी कि किसी बात ने उसे चौंका दिया। वह घबराई। सोचा, ठीक है बनवीर आते ही उदय को पूछेगा। तब क्या उत्तर दूँगी। हो सकता है वह उदय का पीछा करे। इतना सोच उसे एक युक्ति सूझी। उसने उदय के वस्त्र अपने नादान पुत्र को पहना उसे पलंग पर लिटा दिया और स्वयं समीप बैठ गई।

थोड़ी देर बाद आहट हुई। उसे बनवीर के आने का सन्दे[illegible] हुआ। जैसे ही वह उठी बनवीर ने तेजी से अन्दर प्रवेश किय[illegible] और आवेश पूर्वक चिल्लाया—'बताओ, उदयसिंह कहाँ है [illegible]

पन्ना काँप उठी। कण्ठ रुँध-सा गया उसका। वह बो[illegible] सकी। बस, अँगुली का संकेत उसने पलंग पर लेटे अपने [illegible] की ओर कर दिया। फिर क्या था। बनवीर क्रोध से आगे [illegible] और बोला—'ले, आज मैं तुझे हमेशा-हमेशा के लिए नी[illegible] गोदी में सुला देता हूँ।'

और इतना कह उसने तलवार के एक ही वार में कुम[illegible] दो टुकड़े कर दिये।

एक ओर खड़ी पन्ना की आँखों में आँसू थे···और व[illegible] वह अपनी जीत पर खिलखिलाकर हँसा···खूब हँसा;

उसे क्या मालूम था कि कुमार की हत्या का बदला लेने वाला उदयसिंह अभी जीवित है। वह तुझसे एक दिन बदला जरूर लेगा।

बनवीर हँसता हुआ लौट गया। जब वह चला गया पन्ना ने एक बार अपने पुत्र की ओर देखा। पलंग पर उसके शरीर के दो टुकड़े पड़े थे। खून से वस्त्र लाल हो चुके थे।

एक बार तो उसका दिल रो उठा लेकिन तुरन्त बाद उदयसिंह का ध्यान कर उसने सन्तोष की साँस ली। उदयसिंह को बचाने के लिए अपने पुत्र के प्राण देने में उसने अपना गौरव समझा।

कुछ क्षण बाद अवसर पाकर पन्ना जंगल की ओर चल दी। काफी दूर जाने पर बारी उसे मिला। उसके साथ पन्ना उदय को साथ लेकर कई जगह पहुँची, किन्तु बनवीर के भय से किसी ने भी उसे सहारा न दिया। अन्त में निराश होकर वह कुम्भल मर पहुँची। आशाशाह के सामने जब पन्ना ने स्थिति बयान की उसे उस पर दया आ गई और उसने उदयसिंह को अपना भतीजा कहकर अपने यहाँ रख लिया।

देखो, बच्चो ! पन्ना की वीरता। उसने महान् त्याग किया। नारीत्व का नाम उज्ज्वल करने के लिए उसने अपने पुत्र का बलिदान दे दिया। उदयसिंह के प्राणों की रक्षा करके उसने अपने पुत्र का बलिदान दे दिया। उसने गुहिला-वंश के चिराग को बुझाने से बचा लिया। धन्य है वीर पन्ना ! जिसने उदय को जीवन दान देकर देश, धर्म व वंश पर बहुत बड़ा उपकार किया। ऐसी वीर नारी को भला कौन भूल सकता है।

: ५ :

वीर राज माता जीजाबाई

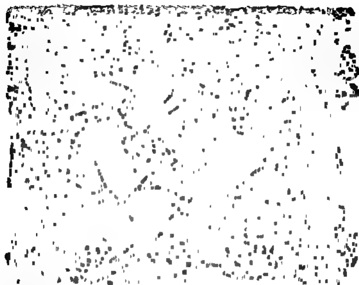
शिवाजी का नाम तो तुम सबने सुना ही होगा ! उन्हीं की माता का नाम जीजाबाई था। जिस प्रकार शिवाजी वीर थे उसी तरह उनकी माता भी वीरांगनाओं में एक थीं। माता का ही तो प्रभाव सन्तान पर पड़ता है। बस, माँ की वीरता ने ही शिवाजी को वीर बनाया था।

वीर नारी जीजाबाई का जन्म सन् १५६७ में अहमदनगर राज्य में हुआ था। वहीं इनके पिता लूखाजी यादवराव वहाँ के राजा के सेनापति थे।

बचपन से ही जीजाबाई में पिता की भाँति वीरों की-सी भावना उत्पन्न हो चुकी थी। जब वह युवा हुई, उसका विवाह मालोजी के पुत्र शाह के साथ सन् १६०४ में हुआ।

मालोजी एक मामूली घुड़सवार था। अतः जीजाबाई की माता गिरिजाबाई नहीं चाहती थी कि उनकी होनहार पुत्री का विवाह मालोजी के पुत्र शाहजी के साथ हो। लेकिन भाग्य की रेखा कौन मिटा सकता है। आखिर जीजाबाई का विवाह शाह जी के साथ ही हुआ।

जीजाबाई बड़ी साहसी और वीर स्त्री थी। उसकी नस-नस में आत्म-गौरव तथा देश-प्रेम व भक्ति की भावनाएँ समायी हुई थीं। वह 'शिव-भवानी' की पूजा किया करती थी। वह



एक सच्ची हिन्दू नारी की तरह अपने कर्त्तव्य पथ से कभी पीछे न हटती थी।

इतना ही नहीं जीजाबाई जिसे राजमाता के नाम से पुकारा जाता था राजनीति में भी निपुण थी। राज के हर काम-काज को वह भली-भाँति समझती थी। अतः कोई ऐसा कार्य न होने देती थी जिससे मातृभूमि की आन और शासन की शान को कोई धब्बा लगे।

सन् १६२३ में जीजाबाई ने एक पुत्र को जन्म दिया। इसका नाम शम्भू जी रखा गया। उसके बाद दस अप्रैल १६२७ में इस वीर राजमाता की कोख से शिवाजी ने जन्म लिया। उस समय शाह जी बीजापुर के दरबार में नौकर थे।

भगवान् की इच्छा, शम्भू जी अधिक दिनों तक जीवित न

रह सके। क़नक गिरी के युद्ध में वे परलोक सिधार गये वीरता इन वीरों की नस-नस में कूटकर भरी थी क्योंकि स्वय जीजावाई अपने पुत्रों को वीरों की कहानियाँ सुनाया करती थी। माता की शिक्षा का सन्तान पर गहरा प्रभाव पड़ता है शम्भु जी और शिवाजी पर माता की शिक्षा का अमिट प्रभाव था। रामायण, महाभारत, तथा वीरों की गाथाएँ सुनाकर जीजाबाई ने अपने पुत्रों में वीरता की भावनाएँ कूट-कूट कर भर दी थीं।

जीजावाई के जीवन में एक ऐसी घटना घटी जिसका उसे दुःख होते हुए भी दुःख न हुआ। जिस समय शिवाजी की उम्र सात वर्ष की थी उस समय शाहजी ने जीजावाई को छोड़कर तुकावाई से शादी कर ली। जीजावाई ने उसकी कोई परवाह न की। वह अपने कर्त्तव्य पथ पर डटी रही और अपने पुत्र शिवाजी को वीर बनाने की शिक्षा-दीक्षा में लगी रही।

एक बार शिवाजी के गुरु ने उनकी परीक्षा लेने का फैसला किया। दर्द का बहाना वनाकर वे आसन पर लेट गये। जब शिवाजी ने पूछा तो उन्होंने कहा—यदि मुझे शेरनी का दूध मिल जाये तो मेरा दर्द ठीक हो सकता है। गुरु के इस प्रश्न को सुनकर सभी शिष्यों का दम खुश्क हो गया। शेरनी का दूध लाना कोई सरल काम तो न था। लेकिन राजमाता जीजा-वाई के पुत्र शिवाजी ने उसे सरल कर दिखाया।

गुरु की आज्ञा पाकर वह हाथ में बर्तन लिए अंधेरी रात के समय जंगल में निकल पड़े। आँधी चल रही थी, वर्षा भयंकर रूप धारण किए हुए थी। तूफान में भी शिवा के कदम वीरतपूर्वक आगे वढ़ते चले गये। अचानक उसे शेरनी की गर्जना सुनाई पड़ी। निडर शिवा उसके पास पहुँचा और अपने विश्वास को मजबूत बना वह दूध लाने में सफल हो गया। जब शिवा ने

अपने गुरु के सामने दूध लाकर रखा सभी चकित रह गये। गुरु ने शिवा की वीरता देखकर उसे आशीर्वाद दिया।

एक दिन प्रातः जब जीजाबाई सूर्य को अर्घ्य दे रही थीं कि उस समय उनकी दृष्टि कोंडाना अर्थात् सिंहगढ़ पर पड़ी। तभी उसके मन में एक भावना उठी और वह थी सिंहगढ़ पर अधिकार करने की। जीजाबाई ने अपनी भावना पुत्र के सामने व्यक्त की और कहा—'शिवा! जब तक तुम सिंहगढ़ नहीं जीतोगे मैं अन्न तो क्या जल भी ग्रहण न करूँगी।'

माँ की प्रतिज्ञा का शिवा पालन क्यों न करता। उसने तुरन्त तानाजी से सहायता माँगी और सिंहगढ़ पर आक्रमण कर दिया। भयंकर युद्ध हुआ। गढ आया लेकिन वीर तानाजी सदा के लिए शिवाजी से अलग हो गए।

तानाजी की मृत्यु का समाचार जब जीजाबाई को मिला उसे दुःख न हुआ। क्योंकि वीर नारियाँ मृत्यु पर आँसू नहीं बहाती। सच, बच्चों का भाग्य बनाना बिगाड़ना माँ के ऊपर ही निर्भर करता है। यह जीजाबाई ने सिद्ध कर दिखाया। यह माँ ही तो है जो अपनी कोख से वीरों को जन्म देती है और हँसते-हँसते उन्हें युद्ध के मैदान में भेज देती है। ऐसी वीर नारियाँ जिन्होंने हमारे सामने आदर्श प्रस्तुत किया है, उन्हें हम कैसे भूल सकते हैं। भारत के इतिहास में इनका नाम स्वर्ण अक्षरों में लिखा हुआ है।

: ६ :

महारानी अहल्याबाई

महारानी अहल्याबाई के नाम से कौन ऐसा होगा जो परिचित न हो। जिस नारी ने विश्व भर में अपनी वीरता का परिचय दिया अपनी बुद्धिमत्ता और आदर्शराज प्रबन्ध से संसार भर में अपना नाम कमाया, वह यही तो है वीर महारानी अहल्याबाई जिसका आज हम गौरवगान करते हैं।

जब अहल्याबाई ने जन्म लिया माता-पिता ने खुशियाँ मनाईं। जब विद्वानों ने इस कन्या का जन्म लग्न देखा तो वे चकित रह गये। माता-पिता के पूछने पर उन्होंने बताया कि कन्या एक दिन महारानी बनकर अपने माता-पिता का नाम रोशन करेगी।

अहल्याबाई का बचपन खेल-कूद और अच्छी बातों में बीता। जब वह जवान हुई, माता-पिता उसकी शादी की चिन्ता करने लगे। जब वक्त आया अहल्याबाई का विवाह मल्हारराव होलकर के पुत्र तुकोजीराव होलकर से हो गया। मल्हारराव होलकर इन्दौर का राजा था।

राजा मल्हारराव की भी एक अद्‌भुत कहानी है। कहते हैं जब किस्मत साथ देती है निर्धन भी राजा बन जाता है। मल्हारराव के साथ भी ऐसा ही हुआ था।

मल्हारराव एक गड़रिया था। भेड़ें चराया करता था समय की बात। एक दिन वह भेड़ें चरा रहा था तभी उसने



समीप से होती हुई एक सेना जा रही थी। वह उस ओर आकृष्ट हुआ और भेड़ें छोड़कर फौज में जा मिला।

वह फौज गुजरात पर चढाई करने जा रही थी। युद्ध के मैदान मे उसने ऐसी वीरता दिखाई कि सेना की एक छोटी टुकड़ी का वह सेनानायक बन गया और फिर वह बत्तीस परगनों पर अधिकार करके वह सुख पूर्वक जीवन बिताने लगा। उसी मल्हारराव के यहाँ अहल्याबाई पुत्रवधू के रूप में आईं और उसे महारानी के नाम से सम्बोधित किया जाने लगा।

कुछ समय के बाद मल्हारराव का स्वर्गवास हो गया। पिता की मृत्यु से तुकोजीराव होलकर को बहुत दुःख हुआ। वह व्याकुल रहने लगा। पति की दशा देख अहल्याबाई ने उसका धीरज बंधाया। लेकिन तुकोजीराव के हृदय पर गहरा धक्का लगा था जिसे वह सहन करने में असमर्थ था।

आखिर राज्य की वागडोर रानी ने अपने हाथों में ले ली। उस समय जब अहल्याबाई गद्दी पर बैठी राज्य की हालत चिन्ताजनक थी। राजनैतिक व सामाजिक क्षेत्र में काफी गिरावट आ चुकी थी। अत्याचारों का बोलबाला था। गरीब पिस रहे थे। उनकी करुण पुकार सुनने वाला कोई भी न था। राज्य के कर्मचारी जनता पर मनमाना व्यवहार कर रहे थे। जब रानी ने यह देखा उसे बहुत दुःख हुआ और अपने पति की सहायता से वह राज्य की बिगड़ी दशा सुधारने में लग गई।

रानी ने राजनैतिक व सामाजिक दशा को सुधारने के लिए सबसे पहले राज्य में फैले हुए अत्याचारों का दमन किया। गरीबी-अमीरी का भेदभाव मिटाया और प्रत्येक दुःखी व्यक्ति को अपना दुःख कहने के लिए उसने दरबार में आने की अनुमति दे दी। इतना ही नहीं राज्य का कोई भी कर्मचारी अगर उसके अनुशासन को भंग करता था तो उसे कड़ी-से-कड़ी सजा दी जाने लगी। इस तरह रानी के नियमों का पालन सभी भली प्रकार से करने लगे।

महारानी अहल्याबाई ने अशोक की भाँति राज्य चलाया। उसके शासनकाल में जनता प्रसन्न थी। किसी भी प्रकार का कोई ऐसा कार्य न होता था जिससे राज्य पर किसी प्रकार का धब्बा लगे। जगह-जगह रानी ने सड़कें बनवाईं। जनता को हर प्रकार कर की सुविधा देने का प्रबन्ध उसने किया था।

सचमुच रानी ने राज्य का संचालन ऐसे ढंग से किया कि विदेशी तथा अन्य राज्यों के राजा उसकी शासन निपुणता देख कर दाँतों तले अँगुली दबा गये थे। रानी ने यह सिद्ध कर दिखाया कि एक कुशल राजा अपनी प्रजा की भलाई के लिए बड़े-से-बड़ा त्याग कर सकता है।

अन्य राज्यों से सम्पर्क स्थापित करना रानी उचित न समझती थी और न ही उसने किसी राज्य के कार्य में हस्तक्षेप ही किया। वह सभी को एक समान समझती थी। इसी कारण अन्य राजा उसे आदर की दृष्टि से देखते थे। महारानी अहल्याबाई की बुद्धिमत्ता, न्याय शासन, सच्चरित्र व आदर्श राजप्रबन्ध ने उसका नाम संसार में उज्ज्वल कर दिया और इसी प्रकार शान्तिपूर्वक राज्य का कार्य चलाती हुई महारानी सत्तर वर्ष की आयु में परलोक सिधार गईं।

इन्दौर राज्य की खुशियाँ छिन गईं। रानी की मृत्यु का जनता के हृदयों पर गहरी चोट लगी और रानी के वियोग में जनता की आँखों से आँसुओं के दरिया बहने लगे। महारानी अहल्याबाई संसार से विदा हो गईं लेकिन अपने पीछे आदर्श की एक ऐसी छाप छोड़ गईं जो आज तक भी भारत के इतिहास में विद्यमान है।

बच्चो! तुम्हें भी ऐसी महान् नारियों के आदर्श जीवन से शिक्षा लेकर अपना तथा समाज व देश का भविष्य उज्ज्वल बनाना चाहिए।



: ७ :

महारानी करुणावती

मेवाड़ के राणा सांगा की सबसे छोटी रानी करुणावती के नाम से कौन परिचित न होगा। इस वीर रानी ने जिस वीरता का परिचय दिया उसे सुन कर रोंगटे खड़े हो जाते हैं। बच्चो ! आज मैं तुम्हें इसी रानी की कहानी सुनाती हूँ।

मेवाड़ पर महाराणा सांगा का आधिपत्य था। वह शूरवीर व पराक्रमी राजा था। सभी उसका लोहा मानते थे।

राणा सांगा की मृत्यु के बाद उनका ज्येष्ठ पुत्र रत्नसिंह मेवाड़ के राज्य सिंहासन पर बैठा। रत्नसिंह अपने पिता की तरह निडर व साहसी था। युद्धकला में वह प्रवीण था। बाहरी किसी भी आक्रमण की उसे चिन्ता न थी।

किन्तु भगवान् की मरजी। रत्नसिंह अधिक दिनों तक जीवित न रह सका। क्योंकि बूँदी के हाड़ा सूरजमल ने उसे कत्ल कर दिया था।

यह घटना भी अनोखी है। सूरजमल रत्नसिंह से द्वेष रखता था। उधर रत्नसिंह के मन में भी सूरजमल के प्रति कोई अच्छी भावना न थी। एक दिन दोनों साथ-साथ जा रहे थे। रत्नसिंह ने अवसर से लाभ उठाना चाहा और दाँव लगते ही उसने सूरजमल पर तलवार का वार कर दिया। सूरजमल बुरी तरह घायल होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा,



लेकिन गिरते-गिरते उसने रत्नसिंह को भी मौत के घाट उतार दिया।

रत्नसिंह की मृत्यु के बाद उसका छोटा भाई विक्रमादित्य गद्दी पर बैठा। वह बहुत ही हठी और दुराचारी था। गद्दी पर बैठते ही उसने राज्य की सारी सम्पत्ति को लुटाना आरम्भ कर दिया। इसका राज्य के कर्मचारियों पर बुरा प्रभाव पड़ा। वे नहीं चाहते थे कि राजा विक्रमादित्य चरित्रहीन होकर राज्य की सम्पत्ति बर्बाद करे। सभी कर्मचारी विक्रमादित्य के खिलाफ़ हो गये।

राजा और कर्मचारियो के बीच विवाद बढ़ गया। जब यह सूचना गुजरात के बादशाह बहादुरशाह तक पहुँची उसने चित्तौड़ पर आक्रमण कर दिया।

अब राजा विक्रमादित्य की आँख खुली। वह [illegible] और बहादुरशाह से मुकाबला करने के लिए [illegible]

में कूद पड़ा। उधर चित्तौड़ के बहुत से सरदार बहादुरशाह की सेना में जा मिले। यह देख विक्रमादित्य घबराया। उधर उसकी सेना भी साहस छोड़ चुकी थी।

उस समय महारानी करुणावती भी युद्ध के मैदान में थी क्योंकि विक्रमादित्य पर उसे विश्वास न था। सैनिकों को घबराई स्थिति में देख करुणावती ने उनका साहस बँधाने के लिए चिल्लाकर कहा—'वीर राजपूतो ! यह तुम्हारी परीक्षा की घड़ी है। उठो, देखो मुगल सेना तुम्हारी आन को मिटा देने पर तुली हुई है। तुम्हारी मातृभूमि दुश्मनों की चोटों से कराह रही है। क्या अपनी मातृभूमि को इस तरह कराहते हुए तुम देख सकोगे ? नहीं, मेरे बहादुरों ! मातृभूमि के लिए कुर्बान हो जाओ। अपना खून बहा दो और दुश्मनों को यह दिखा दो कि चित्तौड़ का एक-एक वीर मातृभूमि के लिए अपना बलिदान दे सकता है—आगे बढ़ो मेरे जवानों, बहादुरों, आगे बढ़ो—।'

बस, रानी के इन शब्दों से सैनिकों का खून खौल उठा। मातृभूमि की रक्षार्थ वे मर-मिटने के लिए वीरता-पूर्वक आगे बढ़े। तलवारें पुनः खनखना उठीं। खून की नदियाँ बहने लगीं। सैनिक कट-कट कर पृथ्वी पर गिरने लगे। चारों दिशाएँ हाहाकार कर उठीं।

मुगलों की सेना अधिक थी। राजपूती सेना ने डट कर उनका मुकाबला किया। अन्त में वे थक गये। निराशा ने उन्हें आ घेरा। रानी ने यह देख साहस से काम लिया। उसने पुनः चिल्लाकर कहा—मातृभूमि पर कुर्बान होने वाले वीरो ! यदि आज तुमने अपनी मातृभूमि की लाज न बचाई तो हमेशा-हमेशा के लिए राजपूतों के नाम को कलंक लग जायेगा। बहादुरो ! मरना एक दिन सभी को है फिर क्यों न शेर की मौत

मरा जाये। युद्ध के मैदान से भाग कर गीदड़ की जिन्दगी जीना क्या पसन्द करोगे तुम ?

'नहीं, नहीं' सभी सैनिक एक साथ चिल्लाये और वे पुनः शर की तरह गरजते हुए दुश्मनों की विशाल सेना पर टूट पड़े। फिर क्या था। सैनिकों का उत्साह दुगुना हो गया। युद्ध का भयानक देव मैदान में फिर से उतर आया। तलवारें फिर से चमकने लगीं।

रानी यह जानती थी कि मुगलों की विशाल सेना का उसके चंद सैनिक कैसे मुकाबला कर सकेंगे फिर भी उसे आशा थी। आखिर सैनिकों का उत्साह वह कहाँ तक बढ़ाती। उसे एक युक्ति सूझी। उसे सम्राट् हुमायूँ का ध्यान आया। उसे विश्वास था कि मुगल होते हुए भी हुमायूँ उसकी सहायता अवश्य करेगा।

उस दिन रक्षा-बन्धन का त्योहार था। रानी ने हुमायूँ के पास अपनी रक्षा के लिए राखी भेजी।

सम्राट् हुमायूँ को रानी करुणावती की जब राखी मिली उसने सहर्ष उसे स्वीकार कर लिया। उसके हृदय में करुणावती के प्रति स्नेह की भावना उत्पन्न हो गई। रानी करुणावती को बहन स्वीकार करके उसने उसकी रक्षा करने का प्रण कर लिया। उन दिनों हुमायूँ शेरशाह से युद्ध लड़ रहा था। उसने तुरन्त उस युद्ध को बन्द कर दिया और बहन की रक्षा करने के लिए चित्तौड़ की ओर चल दिया।

लेकिन हुमायूँ समय पर चित्तौड़ न पहुँच सका। रानी ने उनकी काफी प्रतीक्षा की। अन्त में वह निराश हो गई। संकट का पहाड़ टूट पड़ा उस पर। वह मुगलों के हाथों पड़कर राजपूती शान को धब्बा न लगाना चाहती थी।

निराश महारानी ने अपने सभी सरदारों को एकत्र

और कहा—'वीर सरदारो ! राजपूत हमेशा अपनी आन के लिए लड़े हैं। तुम लोगों ने जिस अद्‌भुत वीरता का परिचय दिया उसे मेवाड़ का इतिहास कभी न भुला सकेगा। मेरे बहादुरो ! अब मैं अपने धर्म-कर्त्तव्य का पालन करना चाहती हूँ। अतः तुम जोहर की तैयारी करो।'

जिस समय करुणावती अपने पाँच वर्षीय पुत्र उदयसिंह को बूंदी भिजवाने लगी वह अपनी माँ से लिपट गया और रोते हुए कहा—'माँ ! मैं भी तुम्हारे साथ ही मरूँगा। मुझे अपने से अलग न करो माँ, !' और वह अपनी माँ के गले से लिपट गया।

करुणावती की आँखें डबडबा आईं। ममता जाग उठी। फिर भी उसने हृदय पर पत्थर रखकर कहा—बेटा ! 'राजपूत कभी दिल छोटा नहीं किया करते। मैं अपने धर्म-कर्त्तव्य का पालन कर रही हूँ। बड़े होकर तुम्हें भी अपनी मातृभूमि की रक्षा करनी है। जाओ बेटा ! खुशी-खुशी जाओ।'

और रानी करुणावती ने अपने पुत्र को बूंदी भेज दिया। पुत्र के चले जाने के बाद नारित्व की रक्षा करने के लिए करुणावती विशाल चिता में बैठ गई। देखते-ही-देखते चिता चल उठी। रानी ने अपने देश, अपनी धरती और वीर सैनिकों को अन्तिम नमस्कार किया और हमेशा-हमेशा के लिए लाल-लाल लपटों के बीच सो गई और अन्त में वहाँ रह गई शेष राख जो मातृभूमि की मिट्टी में मिल गई। धन्य है वीर करुणावती ! तुमने अपनी तथा राजपूतों की लाज बचाने के लिए स्वयं को अग्निदेवी की भेंट चढ़ा दिया।

और-बहादुर शाह ने चित्तौड़ पर अधिकार कर लिया। कुछ दिनों बाद हुमायूं चित्तौड़ पहुँचा। जब उसे ज्ञात हुआ कि उसकी प्रतीक्षा करने के बाद निराश होकर रानी ने अपने

आपको अग्नि की भट चढ़ा दिया तो उसे बहुत दुःख हुआ। सबसे अधिक दुःख उसे अपनी बहन की रक्षा न कर सकने का था।

आखिर हुमायूं ने चित्तौड़ पर आक्रमण करके बहादुरशाह को हरा दिया और चित्तौड़ फिर से राजपूतों को वापिस दिलवा कर उसने करुणावती की इच्छा पूर्ण की।

सचमुच, करुणावती आदर्श नारी थी। उसने अपना ही नहीं चित्तौड़ का नाम उज्ज्वल किया। राजपूतों की शान बढ़ाई। भारत का इतिहास इस वीर रानी को कभी न भूला सकें।

: ८ :

सुलताना चाँद बीबी

बहुत पुरानी बात है। अहमदनगर उस समय निजामशाही राजधानी था। वहाँ के बादशाह हुसैन निजामशाह थे। बड़े वीर योद्धा थे। उनकी एक चाँद-सी पुत्री थी। उसका म था चाँद बीबी। अपने पिता की तरह वह भी योग्य सर्व-ण सम्पन्न-कुशल शासक व राजनीतिज्ञ थी।

उस समय दिल्ली-सम्राट अकबर की धाक थी। बादशाह अकबर अपने राज्य का विस्तार करने की लालसा में रहता था। वह चाहता था कि सारे हिन्दुस्तान पर अधिकार करके वह अपने मन की इच्छा पूरी करे। इसलिए उसने एक विशाल सेना इकट्ठी करके समस्त भारत पर अधिकार करने की योजना बनाई।

जब अकबर ने अवसर पाकर सबसे पहले दक्षिण पर आक्रमण करके उसे जीतने की तैयारी की थी उस समय दक्षिण में मुगल राज्य के साथ-साथ आदिलशाह और निजामशाह का शासन भी था।

आदिलशाह बीजापुर के प्रथम राजा थे। उन्हीं के साथ चाँद बीबी का विवाह हुआ था। भाग्य की बात, आदिलशाह अधिक दिनों तक जीवित न रह सके। कुछ ही समय बा चाँदबीबी का सुहाग हमेशा-हमेशा के लिए मिट गया। व विधवा हो गई और उन पर संकटों का बोझ आ पड़ा। च



बीबी यह ग़म सहन न कर सकी। पति की मृत्यु ने उसे अत्यधिक व्याकुल बना दिया था। कुछ समय पश्चात् चांद बीबी अहमदनगर वापिस लौट आई; किन्तु वहाँ भी उसे आराम न मिला। क्योंकि सम्राट अकबर के पुत्र मुराद ने अहमदनगर पर आक्रमण कर दिया था। चांद बीबी जानती थी कि सम्राट की विशाल व ताकतवर सेना से मुकाबला करना कठिन है। फिर भी उसने साहस से काम लिया। उसने दृढ़ संकल्प किया कि किसी भी कीमत पर वह मुगलों की आधीनता स्वीकार न करेगी।

चांद बीबी ने संकल्प करने के बाद अपनी फौज इकट्ठी की। किले के सभी द्वार बन्द करके उसने अपने सैनिकों को शहर की चहारदीवारी पर तैनात कर दिया।

मुराद की सेना ने शहर को घेर लिया था; किन्तु शहर में प्रवेश पाना उसके लिए कठिन हो रहा था। क्योंकि शहर की

चहारदीवारी के समस्त रास्ते वंद कर दिये गये थे। दोनों ओर से दनादन तोपें बरसने लगीं। आकाश धुँआधार हो गया। हाहाकार मच गया। सैनिकों की भुजाएँ फड़क रही थीं। युद्ध का दृश्य देख कर प्रतीत हो रहा था मानो युद्ध का भयानक देव पृथ्वी पर उतर आया हो।

काफी संघर्ष के वाद मुगल सेना सफल न हो पाई तो उसने परकोटा तोड़ कर किले में प्रवेश करने की योजना वनाई।

मुगल सेना ने शहर के चारों ओर सुरंगें खोदकर उनमें वारूद भर दिया और उसमें आग लगा दी। वस, फिर क्या था। वारूद ने अपना ऐसा प्रभाव दिखाया कि एक ओर का परकोटा टूट गया।

परकोटा टूटते ही मुगल सेना अन्दर प्रविष्ट हो गई। जब चाँद बीबी ने मुगल सेना को शहर में बढ़ते देखा वह तनिक काँपी लेकिन तुरन्त बाद उसने अदम्य साहस दिखाया। सैनिकों में उसने उत्साह की लहर उत्पन्न कर दी और स्वयं सैनिक का वेश धारण करके रणचण्डी वन युद्ध के मैदान में कूद पड़ी।

चाँदवीवी ने युद्ध में ऐसा पराक्रम दिखाया कि मुगल सेना के छक्के छूट गये और वे मैदान छोड़कर भाग खड़े हुए।

मुगल सेना के मैदान छोड़कर भाग जाने के वाद चाँदवीवी ने पुनः रातों-रात परकोटा ठीक करवा दिया। अब उसे प्रतीत होने लगा मुगल सेना उस पर फिर से आक्रमण न कर सकेगी।

लेकिन ऐसा न हुआ। मुगल सेना शहर से वाहर डेरा डाले पड़ी थी। प्रातः मुराद ने परकोटे पर दृष्टि दौड़ाई तो वह घवरा गया। शहर में प्रवेश करने के रास्ते फिर से बंद हो चुके थे। उसकी आशाओं पर पानी फिर गया। पुनः आक्रमण करने की उसकी योजनाएँ निष्फल रहीं। उसका साहस टूट चुका

ा। अतः अपनी सेना सहित वह दिल्ली वापिस लौट आया।

जब मुराद ने अकबर से चाँद बीबी की वीरता का वृत्तान्त सुनाया वह मुगल सेना का अपमान सहन न कर सका। अतः उसने फिर से मुगल सेना को आक्रमण करने के लिए भेज दिया।

मुगलों ने अहमदनगर पर फिर से विशाल सेना के साथ आक्रमण किया। चाँदबीबी घबराई नहीं बल्कि उसने हिम्मत से काम लिया और डटकर मुगलों की फौज का मुकाबला किया। खून की नदियाँ बह चलीं। सैनिक कट-कटकर जमीन पर गिरने लगे। चाँद बीबी के चन्द सैनिकों ने मुगलों की विशाल सेना का अदम्य साहस से सामना किया। चाँद बीबी युद्ध के मैदान में शेरनी की तरह गरजी और उसने काफी सैनिकों को मौत के घाट उतार दिया।

अन्त में चाँद बीबी के थोड़े से सिपाही भी युद्ध करते-करते रणक्षेत्र में सो गये। वीरांगना चाँद बीबी भी अन्तिम दम तक मातृभूमि की रक्षा करती हुई शहीद हो गई। वीरांगना की मृत्यु के साथ ही स्वतन्त्रता-प्रेमी नारी के राज्य का सूर्य अस्त हो गया। मुगलों ने अहमदनगर पर अपना अधिकार कर लिया।

कुछ भी हुआ; किन्तु चाँद बीबी ने अपनी मातृभूमि के लिए वीरता का परिचय देकर नारी के नाम को उज्ज्वल किया। ऐसी स्वतन्त्रता प्रेमी, मातृभक्ति से ओतप्रोत वीर नारी को भारत का इतिहास कभी न भूल सकेगा।

: ६ :

महारानी लक्ष्मी बाई

झाँसी की रानी का नाम तो तुम सभी ने सुना होगा। जहाँ वीरांगनाओं का नाम भारतीय इतिहास में आता है वहाँ झाँसी की रानी लक्ष्मी बाई का नाम अपना एक विशेष स्थान रखता है। अंग्रेजों के खिलाफ क्रान्ति के युद्ध में रानी झाँसी ने अद्भुत वीरता का परिचय दिया।

झाँसी की रानी के विषय में एक कवि ने लिखा है—

"बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी,
खूब लड़ी मरदानी वह तो झाँसी वाली रानी थी।"

वास्तव में वीर लक्ष्मी बाई ने मातृभूमि की रक्षा के लिए अपना सर्वस्व लुटा दिया।

महारानी लक्ष्मी बाई का जन्म १६ नवम्बर सन् १८३५ को काशीनगर में मोरोपन्त नामक एक ब्राह्मण के घर में हुआ था। मोरो बलवन्तराव ताँबे एक मरहठा ब्राह्मण पेशवा-सरकार के यहाँ फौजी अफसर था। उसके बड़े पुत्र का नाम मोरोपन्त था। वे अपने पिता के साथ पूना में चिमाजीअप्पा की छत्रछाया में रहते थे। कुछ समय बाद चिमाजी पूना छोड़ कर काशी आ गये। उन्हीं के साथ मोरोपंत भी काशी आकर रहने लगा। वहीं उसके घर एक दिन सुन्दर कन्या ने जन्म लिया। कौन जान सकता था कि यह कन्या एक दिन झाँसी की रानी बन कर विश्व में अपना नाम रोशन करेगी।



बचपन में इस कन्या का नाम मनू बाई था। आरम्भ से ही मनू साहसी एवं चचल थी। धीरे-धीरे बचपन बीतने लगा।मनू बड़ी होने लगी। जब वह चार वर्ष की हुई मोरोपत के सरंक्षक चिमाजी अप्पा जी स्वर्ग सिधार गये। मोरोपत पर मुसीबतों का पहाड़ टूट पड़ा। उसे चिमाजी की मृत्यु पर बहुत दुःख हुआ। लेकिन करता भी क्या? होनी बलवान। है वह कभी अपने अवसर से नही चूकती।

अधिक परेशान रहने के बाद मोरोपंत ने काशी छोड़ा और वे बाजीराव के पास बिठूर आकर रहने लगे।

पेश्वा बाजीराव के कोई सन्तान नही थी। अतः उन्होने नाना साहब को गोद ले लिया था। उन्हीं नाना साहब के साथ जिन्होंने १८५७ की क्रान्ति को जन्म दिया, खेल-कूद कर मनू युवा होने लगी।

उन दिनों राजा-महाराजाओं के खेल-कूद विशेषतया हथियार चलाना ही हुआ करते थे। मनुवाई ने थोड़ी-सी उम्र में घुड़सवारी करना सीख लिया था। इतना ही नहीं वह हथियार चलाने में प्रवीण हो गई।

मनुवाई के वचपन की एक घटना है। एक वार नाना साहव हाथी पर वैठे हुए थे। उन्हें हाथी पर वैठे देख मनुवाई ने अपने पिताजी से कहा—'मैं भी हाथी पर वैठूंगी पिताजी!'

लेकिन मोरोपंत ने उसे मना कर दिया। वोले—'हम नौकर हैं वेटी! हमारे भाग्य में हाथी पर वैठना कहाँ लिखा है।'

मनुवाई को पिता की ये वातें अच्छी न लगीं। वोली—'आप क्या कहते हैं पिता जी! मैं एक नहीं दस हाथियों की मालकिन वन कर दिखाऊँगी।'

और एक दिन मनुवाई ने वह कर ही दिखाया। उसकी पत्री देख कर एक वार एक ज्योतिषी ने भी वताया था कि यह कन्या राज-रानी वनेगी। लेकिन मोरोपंत को विश्वास न था।

समय व्यतीत होता गया। मनू आठ वर्ष की हुई। उन्हीं दिनों उसकी माता भागीरथी संसार छोड़ कर चल बसी। माँ की मृत्यु से मनुवाई के दिल पर गहरी चोट लगी। तभी से उसने अपना हृदय कठोर कर लिया।

जव मनू जवान हुई उसके पिता मोरोपंत को पुत्री का विवाह करने की चिन्ता लगी। समय की वात। झाँसी के राजा गंगाधर राव की रानी का देहान्त हो गया। गंगाधर को अपनी रानी से अत्यधिक प्रेम था। पत्नी की मृत्यु पर उन्हें अत्यधिक दुःख था। उस दुःख को भुलाने के लिए राजकुल हितैषी तथा अन्य सरदारों ने राव से दूसरा विवाह कर लेने के लिए कहा। लेकिन उन्होंने इन्कार कर दिया।

गंगाधर राव निःसन्तान थे। अतः राजकुल चलाने के लिए राजकुल हितैषियों ने उन्हें शादी कर लेने को विवश कर दिया।

इधर नाना साहब को जब ज्ञात हुआ उन्होंने मनुबाई के लिए गंगाधर राव को योग्य वर समझा। मोरोपंत के सामने जब यह प्रश्न आया वे इस बात को मानने के लिए तैयार हो गये। और ग्यारह वर्ष की आयु में १८४६ को मनू का विवाह झाँसी के राजा गंगाधर राव के साथ कर दिया गया।

अब मनुबाई झाँसी की रानी बन गई। मरहठों की प्रथा के अनुसार उसे लक्ष्मीबाई के नाम से पुकारा जाने लगा।

शादी के पाँच वर्ष बाद सन् १८५१ में लक्ष्मीबाई ने एक पुत्र को जन्म दिया। युवराज की खुशी में झाँसी हर्षोल्लास से गूँज उठी। राजा ने दिल खोल कर दान बाँटा। सभी के मुख पर यही शब्द थे कि अब झाँसी के राजकुल का दीपक नहीं बुझेगा। लेकिन हुआ बिलकुल विपरीत। युवराज अधिक समय तक जीवित न रह सका। पुत्र की मृत्यु ने वृद्ध गंगाधर राव के हृदय पर गहरा आघात पहुँचाया। झाँसी की खुशियाँ ग़म में बदल गयीं। राव पुत्र के दुःख मे बीमार रहने लगे और बीमारी की अवस्था में तीन दिन के पश्चात् २१ नवम्बर १८५३ को वे भी इस संसार से विदा हो गये। झाँसी में शोक छा गया। रानी लक्ष्मीबाई की माँग का सिन्दूर मिट गया।

मृत्यु से पूर्व गंगाधर राव ने अपने एक निकट सम्बन्धी दामोदर राव को गोद ले लिया था। गंगाधर राव की मृत्यु के बाद अंग्रेजों ने दामोदर राव को उनका अवैध उत्तराधिकारी घोषित कर दिया। अंग्रेजों के बढ़ते अत्याचारों से

उधर जब झाँसी

भारतीय जनता वैसे ही तंग आ ... की लक्ष्मीबाई के हाथ से निकल गई तो उसे बहुत दुःख हुआ। जनता पर हो रहे अत्याचारों को देख कर वह बेचैन रहने लगी थी। नाना साहब ने क्रान्ति की अग्नि जलाई तो लक्ष्मी-बाई का उत्साह बढ़ा और वह भी क्रान्ति की धधकती ज्वाला में कूद पड़ी।

नाना साहब और तांत्या टोपे क्रान्ति की आग को निरन्तर उत्तेजित करने में लगे थे। रानी झांसी भी चैन से न बैठ सकी। अंग्रेजों के बढ़ते अत्याचारों से तंग आकर रानी ने गाँव-गाँव में जाकर सोये हुए भारतीयों को जगाया। उसने महिलाओं को एकत्र करके एक ऐसा विभाग खोला जो अंग्रेजों की प्रत्येक गतिविधि का पता लगा सके। स्वयं रानी ने इस विभाग को सफलतापूर्वक चलाने का भरसक प्रयत्न किया।

विद्रोह की ज्वाला दिन प्रति दिन जोर पकड़ती जा रही थी। मेरठ में क्रान्ति की आग सुलगी। बहादुरशाह को भारत का सम्राट् घोषित करके नाना साहब ने जगह-जगह विद्रोह की आग को चेतन किया। रानी ने इस अवसर से लाभ उठाया।

रानी की बढ़ती शक्ति को देख कर अंग्रेजों ने उसका दमन करना चाहा। अतः मेजर डनलप को सेना के साथ उसे दबाने के लिए तैयार किया गया। लेकिन रानी डरने वाली कहाँ थी, डनलप के साथ उसका भयंकर युद्ध हुआ। मेजर डनलप रानी की युद्ध कौशलता से घबरा उठा। अन्त में वह हार गया। उसके हारते ही रानी ने पुनः झाँसी के दुर्ग पर ९ जून १८... को अधिकार कर लिया।

जब अंग्रेजों को ज्ञात हुआ कि लक्ष्मीबाई ने फिर से झाँसी पर अधिकार कर लिया है तो उन्होंने झांसी लौटा देने

प्रस्ताव उसके पास भेजा। भला रानी अपनी झाँसी को कैसे लौटा सकती थी। उसने अंग्रेजों के प्रस्ताव को निर्भयता पूर्वक ठुकरा दिया।

आखिर अंग्रेजों ने १० मार्च १८५८ को झाँसी पर आक्रमण कर दिया। तोपें दनदना उठी। आकाश धुआँधार हो उठा। निरन्तर तेरह दिन तक तोपें गरजती रही। गोलियाँ चलती रहीं, लेकिन लक्ष्मीबाई ने हिम्मत न हारी और उसने जनरल रोज के दांत खट्टे कर दिये।

उस दिन जनरल रोज हार कर पीछे हट गया। उसने पुनः योजनाबद्ध आक्रमण करने का निर्णय किया। उसने मुख्य द्वार से तीन सौ गज के फासले पर मोर्चा लगाया। रानी को उसके इस निर्णय के बारे कुछ भी पता न चला था। वह तो समझती थी जनरल रोज हार कर भाग गया होगा। लेकिन जब सुबह होते-होते दनदनाती हुई तोपों का भयानक स्वर आकाश में गूंजा तो उसने पुनः हथियार संभाल लिये। भयंकर युद्ध होने लगा। हाहाकार मच गया। आग की लाल लपटें शहर को जलाने लगीं।

रानी वीरतापूर्वक दुश्मनों के दाँत खट्टे कर रही थी। झाँसी के वीर सैनिक मातृभूमि पर मिट रहे थे। जनरल रोज के पैर उखड़ने लगे। रानी की वीरता के सामने डटना उसके लिए कठिन हो गया। उसे भय था कहीं अब की बार उसे मैदान छोड़ कर भागना न पड़ जाय। वह सोच ही रहा था कि एकाएक दुर्ग का द्वार खुल गया और अंग्रेजों की फौज अन्दर प्रविष्ट हो गई।

रानी को जब पता लगा कि डलहौजी तोपची ने उसके साथ विश्वासघात कर दुर्ग का द्वार खोल दिया है तो उसे

गहरा धक्का लगा। उसने तुरन्त सैनिक को उत्साहित किया। स्वयं घोड़े पर सवार होकर रानी ने चमकती हुई तलवारें अपने दोनों हाथों में सम्भाल लीं।

फिर क्या था। युद्ध का भयंकर देव रण के मैदान में कूद पड़ा। खून की नदियाँ बहने लगीं। झाँसी के वीर सैनिकों ने अदम्य वीरता दिखाई। आखिर अंग्रेजों की विशाल सेना के सामने डटे रहना उनके लिए कठिन हो गया। क्योंकि अंग्रेजों की शक्ति के मुकाबले उनके सैनिकों की संख्या अधिक न थी।

अपने सैनिकों को घबराये देख रानी ने साहस से काम लिया। अपने वीरों को डगमगाते देख उसने साहस बँधाते हुए कहा, 'झाँसी के वीर सपूतो! मातृभूमि अपनी रक्षा के लिए तुम्हें पुकार रही है। देखो, दुश्मनों के पैरों से मातृभूमि का कलेजा काँप रहा है। आगे बढ़ो, दुश्मनों के छक्के छुड़ा दो।'

फिर तो सैनिकों का उत्साह दुगुना हो गया। वीरतापूर्वक वे आगे बढ़े; किन्तु युद्ध करते-करते आखिर उनके कदम डग-मगा ही गए। विशाल व शक्तिशाली सेना का आखिर कब तक वे मुकबला कर सकते थे। अन्त में रानी युवराज सहित अंग्रेजों के चंगुल से निकल गई। क्योंकि अंग्रेजों ने दुर्ग पर अधिकार कर लिया था। झाँसी छोड़ते समय उसने प्रण किया था—'या तो में प्राण दे दूँगी अथवा झाँसी वापस लूँगी।'

रानी वेग से काल्पी की ओर बढ़ी। उसे विश्वास था कि काल्पी से सहायता लेकर वह पुनः झाँसी को अपने अधिकार में कर लेगी। लेकिन दुर्भाग्य की बात, रानी को मार्ग में ही दुश्मनों ने घेर लिया। नंगी तलवारें नाचने लगी। भीषण युद्ध में उसके शेष सरदार भी मारे गये। इस यद्ध में रानी का प्रिय घोड़ा

भी घायल हो चुका था। घायल अवस्था में घोड़े ने अपनी टाँगों पर पड़े हो मातृभूमि को अन्तिम नमस्कार किया और फिर हमेशा-हमेशा के लिए संसार से विदा हो गया। रानी घोड़े की पीठ से पहले ही उतर चुकी थी। अपने प्रिय घोड़े की मृत्यु पर उसे अत्यधिक दुःख हो रहा था।

अब रानी के लिए काल्पी पहुँचना कठिन हो रहा था। उसने साहस न तोड़ा। आस-पास के गाँव से उसने एक घोड़ा मँगवाया और वीरतापूर्वक वह काल्पी पहुँची।

नानासाहब और तांत्याटोपे उन दिनों काल्पी में थे। लक्ष्मी-बाई को देख वे आश्चर्यचकित रह गये। जब रानी ने उन्हें सार वृत्तान्त सुनाया उन्होंने मिलकर झाँसी को वापिस लेने की योजना बनाई। रानी फिर झाँसी की ओर चल दी। रास्ते में अंग्रेजों ने उसे फिर घेर लिया। इस समय उसके साथ चन्द सैनिक थे। वहाँ से बच निकलने के बाद रानी काल्पी छोड़कर वापिस पहुँची। वहाँ भी अंग्रेजों की फौज ने उसका पीछा किया। भयंकर युद्ध हुआ। रानी के एक मुसलमान तोपची गौंस खाँ ने दुश्मनों का वीरता से मुकाबला किया। लेकिन अधिक समय तक रानी की सेना उनके सामने न डट सकी।

रानी की सारी सेना युद्ध में काम आ चुकी थी। अब वह अकेली रह गई। अंग्रेजों की सेना के झुण्ड में घँसी होने पर भी उसने हिम्मत न हारी। वीरतापूर्वक उसने दुश्मनों के सिर काट-काट कर पृथ्वी पर गिरा दिए। यद्यपि उसका समस्त शरीर छलनी हो चुका था फिर भी मातृभूमि के लिए वह अन्तिम दम तक लड़ती रही। अन्त में १८ जून १८५८ में झाँसी की वीर रानी लक्ष्मीबाई मातृभूमि के लिए शहीद

हो गई।

महारानी लक्ष्मीबाई का नाम भारत के इतिहास में हमेशा अमर रहेगा। उसने देश के लिए अपने प्राणों का बलिदान देकर भारतीय नारी के नाम को उज्ज्वल किया है, बच्चो ! तुम्हें भी रानी की तरह वीर एवं साहसी बनना चाहिए।

: १० :

वीर ताईबाई



भारतीय वीरांगनाओं में जहाँ महारानी लक्ष्मीबाई, रानी करुणावती, दुर्गावती आदि नारियों का नाम आता है उसी क्रम में वीर ताईबाई का नाम भी जुड़ जाता है। वीर ताई-बाई ने अपनी वीरता का अद्भुत उदाहरण प्रस्तुत करके भारतीय नारी के नाम को ऊँचा किया है। भारत में जिस प्रकार महाराणा प्रताप, वीर शिवाजी आदि वीर पुरुषों ने अपने देश की रक्षार्थ प्राणों का बलिदान दिया उसी प्रकार

नारियाँ भी मातृभूमि की रक्षा करने में पीछे नहीं रही हैं।

वीर ताईवाई भी एक ऐसी वीरांगना है जिसकी वीरता के सामने बाजीराव पेशवा को भी झुकना पड़ा था। ताईवाई का जन्म कराड़ा नामक प्रान्त में एक तेली के घर में हुआ था। वह अत्यधिक सुन्दर थी। जब वह युवा हुई और उसकी सुन्दरता की चर्चा दूर-दूर तक फैली तो कराड़ा के राजा परशुराम पन्त उस पर मुग्ध हो गये। वे उसे अपनी रानी बनाना चाहते थे।

भाग्य की बात। ताईबई को रानी बनना था। अतः परशुराम ने उसके साथ विवाह कर लिया।

कराड़ा का राजा परशुराम पन्त विलासी व्यक्ति था। हर घड़ी वह विलासता में डूबा रहता था। ताईवाई को अपने पति की आदत अच्छी न लगी। वह नहीं चाहती थी कि विलासता में डूबकर उसका पति प्रजा के दुःखों का ख्याल भी न करे। लेकिन वह करती क्या ? ताईवाई अपने पति की दशा देख चिन्तित रहने लगीं।

समय गुजरता गया। राजा परशुराम पन्त अपनी प्रजा का ध्यान तो क्या रखता, वह उनको और भी परेशान करने लगा। इससे कराड़ा की जनता अत्यधिक दुःखी थी। जब रानी ताईबाई ने प्रजा की हालत देखी तो उसने अपने पति को समझाया, पर उसने उसकी एक भी न सुनी और उसी प्रकार वह प्रजा पर अत्याचार करता रहा।

एक दिन दुःखी होकर रानी ने उसे पुनः कहा—आप विलासता में डूबे रहकर अपना भविष्य बिगाड़ रहे हैं। कम-से-कम अपनी प्रजा का तो ख्याल कीजिए।

उसकी बात सुन राजा परशुराम ने कहा—मैं तुमसे बहुत प्यार करता हूँ; किन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं कि तुम मेरे रंग में भंग डालो। यह एक रानी को शोभा नहीं देता।

'यह आप ठीक कहते हैं।' ताईबाई ने बड़े विनम्र भाव से उत्तर दिया—'आप मेरे पति हैं। हृदय से मैं आपका स्वागत करती हूँ, मान करती हूँ लेकिन आप यह क्यों नहीं सोचते कि प्रजा अपने राजा के व्यवहार पर जिन्दा रहती है। राजा रक्षक होता है अपनी प्रजा का भक्षक तो नहीं होता। क्या आपको यह शोभा देता है कि आप तो राजशाही सुख प्राप्त कर और आपकी दुःखी जनता रो-रोकर दम तोड़ दे। आपको प्रजा का ख्याल रखना ही होगा। प्रजा के कष्टों का यदि आप ध्यान रखेंगे तो राज्य का कार्य सुचारु रूप से चल सकता है।

ताईबाई के इतना समझाने पर भी राजा परशुराम पन्त ने उसकी बातों पर कोई भी ध्यान नहीं दिया। वह उसी तरह ऐशो-आराम में डूबा रहा। अपनी प्रजा पर उसी तरह अत्याचार करता रहा। उसका परिणाम यह हुआ कि प्रजा पर दु.खों का पहाड़ टूट पड़ा।

आखिर प्रजा कब तक राजा के अत्याचारों को सहन करती। प्रजा में अराजकता फैल गई। राजा के विरुद्ध क्रान्ति की ज्वाला भड़क उठी। प्रजा को अपने विरुद्ध देख राजा परशुराम पन्त की आँखें खुली। उसने क्रान्ति की आग को बुझाना चाहा; किन्तु सफल न हो सका। यह देख रानी ताईबाई ने बुद्धि से काम लिया। अपने पति से बोली—'कुछ समय के लिए राज्य की बागडोर आप मेरे हाथ में दे दीजिए। मैं प्रजा मे फैले असन्तोष को समाप्त कर दूँगी।'

लेकिन परशुराम न माना। उसने दृढ़तापूर्वक कह दिया—'यह कैसे हो सकता है। मैं राज्य की वागडोर किसी भी हालत में तुम्हें नहीं दे सकता।'

रानी को वहुत दुःख हुआ। उसे राज्य के न मिलने का दुःख नहीं था वल्कि प्रजा में अपने पति के खिलाफ फैले असंतोप का उसे अत्यधिक दुःख था। पति की विलासिता और प्रजा पर उसके अत्याचारों ने उसे अधिक व्याकुल वना दिया था।

अन्त में अपने पति को हठ करते देख उसने प्रजा की भलाई के लिए उसके विरुद्ध पग उठाया। उसने वाजीराव पेशवा से सहायता लेकर कराड़ा राज्य की वागड़ोर अपने हाथ में सम्भाल ली।

परशुराम पन्त ने इसको अपना घोर अपमान समझा। ताईवाई को अपने पति से किसी प्रकार का द्वेष न था। उसने जो भी किया प्रजा में फैली अराजकता को समाप्त करने के लिए। परशुराम को पत्नी के हाथ में वागडोर चले जाने का इतना दुःख न हुआ लेकिन वाजीराव पेशवा द्वारा हस्ताक्षेप करना उसे रुचा नहीं था। अतः उसने सितारा के राजा से सहायता लेकर वाजीराव पेशवा पर आक्रमण कर दिया। दोनों में भयंकर युद्ध हुआ। पेशवा की विशाल सेना का सामना करना कोई सरल न था उसके लिए। आखिर वह हार गया।

जव रानी ताईवाई को अपने पति की गिरफ्तारी का पता चला उसे वहुत दुःख हुआ। उस समय रानी के व्यवहार से प्रजा और सैनिक सन्तुष्ट थे। अतः उसने अपने पति को छुड़ाने

के लिए सैनिकों को मंसूरगढ़ के किले पर चढ़ाई करने के लिए भेज दिया।

अवसर पाकर रानी ताईबाई भी सैनिकों सहित मंसूरगढ़ पहुँची। वहाँ ताईबाई और बापू गोखले के मध्य भीषण युद्ध हुआ। खून की नदियां बही। काफी सैनिक मौत के घाट उतर गये। हाहाकार मच गया रणक्षेत्र में। अन्त में अपनी वीरता और साहस के बल पर रानी ताईबाई की विजय हुई। उसने मंसूरगढ़ के किले पर अधिकार कर लिया और अपने पति को मुक्त कर दिया।

अब वीर ताईबाई ने अपने राज्य का विस्तार करना प्रारम्भ कर दिया। उसकी शक्ति बढ़ती गई। प्रजा उसके व्यवहार से बहुत प्रसन्न थी। अपनी प्रजा के हर दुःख को दूर करना वह अपना परम कर्त्तव्य जो समझती थी इसलिए कोई उससे असन्तुष्ट न था।

धीरे-धीरे रानी की शक्ति बढ़ने लगी। बाजीराव पेशवा उसकी बढ़ती हुई शक्ति को देखकर बहुत बेचैन रहने लगा। वह नहीं चाहता था कि ताईबाई जिसकी उसने एक दिन सहायता की थी राज्य का विस्तार करके अपनी ताकत बढ़ाये। वह उससे जलने लगा था। अत: उसने बापू गोखले की विशाल सेना देकर रानी ताईबाई पर आक्रमण करने के लिए भेज दिया।

उन दिनों ताईबाई मसूरगढ़ के किले में थी। बस मसूरगढ़ का मैदान युद्ध का अखाड़ा बन गया। तलवारें चमक उठी। सिर कट-कटकर पृथ्वी पर लुढ़कने लगे। अनेकों नारियों का सुहाग उजड़ गया। यहाँ तक कि मसूरगढ़ की धरती वीरों

के खून से लाल हो गई।

आखिर मराठों की शक्तिशाली सेना के सामने ठहरना ताईबाई के लिए कठिन हो गया। बहादुर सैनिकों का खून होते हुए वह अब देख न सकी और उसने आत्म समर्पण कर दिया।

यदि रानी चाहती तो मराठों के चंगुल से भागकर निकल सकती थी लेकिन उसने ऐसी कायरता नहीं दिखाई। मैदान में हथियार डालने के बाद बापू गोखले ने उसे बंदी बना लिया।

बाजीराव पेशवा के सामने रानी ताईबाई को पेश किया गया। सभी को यह उम्मीद थी कि बाजीराव पेशवा उसे कारागार में डाल देगा, पर उसने ऐसा नहीं किया। वीर पुरुष वीरता की कद्र करना जानता है। बाजीराव ने रानी से कहा—मैं चाहूँ तो तुमसे अब अच्छी तरह बदला ले सकता हूँ। लेकिन नहीं, वीर पुरुष को यह शोभा नहीं देता। वास्तव में तुम वीर नारी हो। वीर हमेशा वीरता का सम्मान करना जानता है। इसलिए तुम्हारी वीरता से प्रभावित होकर मैं तुम्हें तुम्हारा राज्य वापिस लौटाता हूँ।

और उसने सहर्ष रानी ताईबाई का राज्य उसे वापिस लौटा दिया। रानी बड़ी प्रसन्न हुई। उसने अपने राज्य का कार्य सुचारुरूप से चलाया और एक दिन अपने कर्त्तव्य और धर्म का पालन करती हुई वीर ताईबाई परलोक सिधार गई। रानी की मृत्यु पर प्रजा को अत्यधिक दुःख हुआ।

सचमुच वीर ताईबाई ने अपनी वीरता का परिचय देकर अपना ही नहीं, अपने माता-पिता राज्य व देश के साथ-साथ भारतीय नारी का मस्तक गर्व से ऊँचा किया है। जब तक चांद और तारे हैं तब तक वीर ताईबाई का नाम भारत के इतिहास में अमर रहेगा।

बच्चा ! तुमने आरम्भ से अन्त तक वीर नारियों की कहानियाँ पढ़ीं । अब तुम्हें मालूम हो गया होगा कि हमारे देश में नारियों ने भी वीरता का परिचय देकर अपने देश का भाल उन्नत किया है । इसलिए तुम भी आज प्रण करो कि हम सब बहनें मिलकर अपने कर्त्तव्य का पालन करती हुई मातृभूमि पर बलिदान हो जाएँगी मगर किसी के सामने झुकेंगी नहीं । हमें अपने राष्ट्र का गौरव बढ़ाना है । यही हमारा परम कर्त्तव्य है जिसका अन्तिम दम तक हमें पालन करना है ।

७

: ११ :

देवी इन्दिरा

अब तक तुमने भारत की वीरांगनाओं के बारे में पढ़ा। उन वीर नारियों ने अपने कर्त्तव्य, धर्म और देश के लिए जो बलिदान दिया वह अद्वितीय है। भारत की नारियाँ भी वक्त आने पर पुरुषों से पीछे नहीं रही हैं। अपनी आन और मान-मर्यादा के पालन हेतु उन्होंने अदम्य साहस का परिचय दिया है।

उन्हीं नारियों की भाँति वर्तमान समय में भारत की प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी भी निस्वार्थ भाव तथा अपने अदम्य साहस से देश के शासन का संचालन कर रही हैं।

देवी इन्दिरा भारत के भूतपूर्व प्रधानमन्त्री स्वर्गीय जवाहर-लाल नेहरू की पुत्री हैं। इनके बाबा मोतीलाल नेहरू अपने समय के प्रसिद्ध वकील थे। ब्रिटिश सरकार उनका लोहा मानती थी। उनके योग्य तथा प्रतिभाशाली सुपुत्र पं० जवाहर-लाल नेहरू ने भारत के स्वतन्त्र होने के बाद प्रधानमन्त्री का पद ग्रहण करके अपने पिता का नाम उज्ज्वल किया और अब प्रधानमन्त्री के पद पर रह कर देवी इन्दिरा अतीव साहस, लगन, धैर्य एवं आत्मविश्वास के कार्य करती हुई अपने पिता तथा बाबा के नाम को चार चाँद लगा रही हैं। भारत का प्रत्येक नागरिक आज इसे सम्मान की दृष्टि से देखता है।



देवी इन्दिरा का जन्म १९ नवम्बर सन् १९१७ को हुआ था। इनके पिता का नाम तो तुम भली-भाँति जानते हो। इनकी माता का नाम कमला नेहरू था। माता-पिता की इकलौती सन्तान होने के कारण आपका लालन-पालन बड़े ही प्रेम और शान-शौकत से हुआ। किशोरावस्था में इन्हें 'इन्दिरा प्रियदर्शिनी' के नाम से सम्बोधित किया जाता था, किन्तु जवाहरलाल नेहरू प्यार से अपनी बेटी को 'इन्दु' कहकर ही पुकारते थे।

बच्चो! ऊपर जिस चित्र को तुम देख रहे हो वह देवी इन्दिरा का ही है।

बचपन में इनकी शिक्षा 'शान्ति-निकेतन' में विश्व कवि

रवीन्द्रनाथ ठाकुर की देख-रेख में हुई। वहाँ रहकर इन्होंने बंगला, कला व संस्कृति का खूब अध्ययन किया। इन्दिरा का प्रभाव रवीन्द्र बाबू पर भी पड़ा। निकेतन से विदा करते समय उन्होंने नेहरू को एक पत्र भी लिखा था। उन्होंने लिखा था—में बड़े भारी मन से बेटी इन्दिरा को निकेतन से विदाई दे रहा हूँ। यह मेरे स्कूल की अमूल्य निधि है। मुझे आशा है कि इन्दिरा का भावी जीवन अच्छा रहेगा।

इन्दिराजी ने स्वयं भी कहा है कि निकेतन में मुझे सुरक्षित और शान्ति का वातावरण मिला था। यह सत्य ही था। कविवर रवीन्द्रनाथ टैगोर की देख-रेख में इन्दिरा ने बहुत कुछ अर्जित किया।

राजनीति का भी इन्दिराजी पर विशेष प्रभाव पड़ा। आनन्द-भवन जो इनका घर है और इलाहाबाद में है, उन दिनों राजनीति का अखाड़ा बना हुआ था। इनके पिता जवाहरलाल नेहरू क्रान्ति में सक्रिय भाग ले रहे थे। जगह-जगह अंग्रेजों के खिलाफ जलूस निकाले जा रहे थे। भारत को आजाद कराने के लिए देश-भक्त जी-जान की बाजी लगा रहे थे। उस समय इन्दिरा की आयु बारह वर्ष की थी। इन पर भी क्रान्ति का प्रभाव पड़ा। देश-भक्ति की भावना उजागर हो गई और इन्दिरा ने उससे प्रभावित होकर बच्चों की एक सेना एकत्र की। उसका नाम उन्होंने 'वानर' सेना रखा। वह सेना बड़े-बड़े कार्यकर्त्ताओं की सहायता किया करती थी। इस प्रकार 'वानर सेना' का इन्दिरा को संचालन करते देख सभी उसकी ओर आकृष्ट थे। सभी को उससे अपार स्नेह हो गया था।

गाँधीजी का प्रभाव इन्दिरा पर गहरा पड़ा। सत्य-अहिंसा के मार्ग पर चलती हुई इन्दिरा पिता की तरह क्रांति के समर

में आगे बढ़ने लगी। उन दिनों श्रीमती सरोजनी नायडू ने पं० जवाहरलाल नेहरू को लिखा था कि इन्दिरा 'भारत की नई आत्मा' है। सच, उनका कहना आज प्रत्यक्ष रूप में हमारे सामने है।

एक बार जब कमला नेहरू बीमार हुईं उन्हें इलाज के लिए योरोप ले जाया गया। उस समय इन्दिरा भी अपनी माता के साथ वहां गई थी। कमला की दशा सोचनीय होती जा रही थी। एक दिन सन् १९३६ को स्विटजरलैण्ड में उनका देहान्त हो गया। पिता और पुत्री को कमला नेहरू के निधन से काफी दुःख हुआ। एक ओर क्रान्ति का दौर चल रहा था दूसरी ओर नेहरू जी पर मुसीबतों का बोझ पड़ गया था। उन्होंने फिर भी साहस न तोड़ा। अपनी पुत्री को उन्होंने इंग्लैंड के एक समरविले कालेज आक्सफोर्ड में प्रविष्ट करा दिया। इन्दिराजी ने वहीं शिक्षा प्राप्त की। आप वहीं की ग्रेजुएट हैं।

शिक्षा ग्रहण करने के उपरान्त इन्दिराजी भारत लौटीं। उन दिनों देश के कोने-कोने में क्रान्ति की आग फैली हुई थी। पं० नेहरू व मोतीलाल नेहरू में देश प्रेम की लहरें उठ चुकी थीं। उन्होंने क्रान्ति को सफल बनाकर भारत को स्वतन्त्र कराने का दृढ़ संकल्प किया हुआ था। गांधीजी के सम्पर्क में आकर इन्दिराजी में राष्ट्रीय भावना ने ऐसा रूप धारण किया कि २१ वर्ष की आयु में स्वतन्त्रता-संघर्ष के कारण उन्हें भी तेरह मास का कारावास भुगतना पड़ा।

उन दिनों गांधीजी ने 'भारत छोड़ो' का नारा लगाया था। गांधीजी के आह्वान पर वे पुनः क्रान्ति के युद्ध में कूद पड़ीं।

सन् १९४२ में इन्दिराजी का विवाह फ़िरोज गांधी के साथ हुआ। जैसा कि पीछे बताया जा चुका है 'भारत छोड़ो'

आन्दोलन में भाग लेने के कारण नव विवाहित को कारावास में जाना पड़ा था। उस समय अन्य नेतागण भी जेल में ठूंस दिये गये थे। फिरोज गाँधी ने भी अपनी वर्षगाँठ जेल में ही मनाई। चौदह मास का कारावासी जीवन बिताया। फिर भी राष्ट्रीय भावना के प्रति आप में कोई कमी नहीं आई।

एक बार की बात है कि इलाहाबाद में पानी के नल की कुछ गड़बड़ हो जाने के कारण घर में पानी आना बंद हो गया। इन्दिराजी ने दूसरे का सहारा न तका वल्कि स्वयं ही कीचड़ में बैठकर उन्होंने पाइप को ठीक कर लिया। जब उनसे पूछा गया तो बोली—गांधीजी ने ही तो बताया है कि श्रम करने से घबराना नहीं चाहिए।

कवि रवीन्द्रजी, गांधीजी तथा जवाहरलाल नेहरू का इन्दिरा पर गहरा प्रभाव पड़ा था। नेहरूजी ने एक बार जेल से 'पिता का पत्र पुत्री के नाम' एक पत्र लिखा था। इसी प्रकार वे अपनी पुत्री में हर दृष्टिकोण से उच्च भावनाएँ भरा करते थे। क्रान्ति में भाग लेना भी इन्होंने अपने पिता व गाँधी जी से सीखा।

सन् १९४७ में भारत स्वतन्त्र हुआ लेकिन साथ ही दो भागों में विभक्त हो गया। अंग्रेजों ने एक हिन्दुस्तान और दूसरा जिन्नाह के कहने पर पाकिस्तान घोषित कर दिया। देश में हलचल मच गई। हिन्दू-मुसलमानों में फ़िसाद हो गया। उसका देश के सभी नेताओं को दुःख हुआ। इन्दिरा जी नहीं चाहती थीं कि इस तरह बँटवारा होने पर देशवासी इस तरह परस्पर खून की नदियाँ बहायें।

देश की स्वतन्त्रता में इन्दिराजी ने अपना पूर्ण सहयोग प्रदान किया। योग्य पिता की योग्य पुत्री ने देश रक्षार्थ जो

कार्य किये उनकी सभी ने भूरि-भूरि प्रशंसा की थी।

एक बार की घटना बड़ी दिलचस्प है इन्दिराजी की। सन् १९५० की बात है। एक दिन इन्दिराजी कनाट प्लेस घूमने आईं। वहीं पटरी पर एक अपाहिज बालक कुछ चीजें बेच रहा था। इन्दिराजी ने बालक को देखा तो प्रभावित हुईं। उससे छोटी उम्र में चीजें बेचने का कारण पूछा तो ज्ञात हुआ वह एक गरीब परिवार का है। इसी तरह चीजें बेच कर कार्य चलाता है। यहाँ तक कि वह किसी स्कूल में शिक्षा ग्रहण भी नहीं करता। इन्दिराजी ने अपंगों की दशा सुधारने के लिए कुछ सामाजिक कार्यकर्ताओं से विचार-विमर्श किया। उसके बाद उन्होंने बाल सहयोग संस्था की स्थापना की। इस संस्था में अनाथ व सड़कों पर मारे-मारे फिरने वाले बच्चों को रखा जाने लगा। यह इन्दिराजी के परिश्रम का परिणाम है।

इन्दिराजी अपने स्वर्गीय पिता पं० जवाहरलाल नेहरू के साथ इंग्लैंड, अमेरिका, रूस, फ्रांस आदि देशों की यात्रा कर चुकी हैं। आप अमेरिका कई बार गईं।

सन् १९५५ में आप कांग्रेस कार्यकारिणी की सदस्य बनीं। इसके अतिरिक्त कांग्रेस महिला विभाग और केन्द्रीय चुनाव बोर्ड, पार्लियामेंटरी बोर्ड और युवा कांग्रेस की भी आप सदस्य बनीं। फरवरी १९५९ में आप राष्ट्रीय कांग्रेस की अध्यक्ष निर्वाचित हुईं। इसका अधिवेशन नागपुर में हुआ था। सन् १९६० में युनेस्को में भारतीय प्रतिनिधि मण्डल की सदस्य रहीं। उसके बाद सन् १९६४ तक युनेस्को की कार्यकारणी की आप सदस्य रहीं।

अपने पिता की भांति इन्दिराजी ने हर क्षेत्र में ज्ञान प्राप्त किया और जो सीखा उसे प्रयोग में लाईं। एक बार सन्

१९५७ में जब कांग्रेस कार्यकारिणी के लिए महासमिति के सदस्यों में खुला मतदान हुआ तो श्रीमती इन्दिरा गांधी को सब से अधिक मत मिले थे। यह इनकी लोकप्रियता का प्रतीक है। नेहरूजी के जीवन-काल में कई बार उनके मन्त्रिमण्डल में लिये जाने की इन्दिराजी पर चर्चायें हुई लेकिन इन्होंने उचित न समझा।

नेहरूजी के निधन के पश्चात् जब स्वर्गीय लालबहादुर शास्त्री प्रधानमन्त्री बनें तो उन्होंने इन्दिराजी को अपने मंत्रिमण्डल में लेने का प्रस्ताव उनके सामने रखा। इससे वे सहमत हो गई और उन्हें सूचना और प्रसारण मन्त्री के पद पर नियुक्त कर दिया गया। आपने अपने पद पर रहकर पूरी निष्ठा, तत्परता व कुशलता से अपने दायित्व को निवाहा।

२७ जनवरी १९६५ में सूचना एवं प्रसारण मन्त्री की हैसियत से आपने कैनेक टिकट, इलियान आदि देशों का भ्रमण किया। न्यूयार्क में इसी बीच आपने 'नेहरू स्मारक प्रदर्शनी' का उद्घाटन भी किया था।

देवी इन्दिरा गांधी अहम् भाव से बहुत दूर हैं। मानवता कूट-कूटकर भरी है इनमें। हर किसी बात को बड़े ध्यान से सुनकर अपना निर्णय देती हैं। राजनैतिक क्षेत्र में निरन्तर इन्होंने बड़ी लगन से कार्य को पूरा किया। जनवरी १९६६ में अचानक ताशकन्द में श्री लालबहादुर शास्त्री जी के निधन से आपको गहरा दुःख हुआ। समस्त राष्ट्र शोक में डूबा हुआ था। उनकी मृत्यु के बाद प्रश्न आया किसे प्रधानमंत्री बनाया जाये। सभी की आँखें इंदिराजी पर लगी थीं। अन्त में इंदिरा जी को प्रधानमन्त्री पद सँभालना पड़ा। पिता की मृत्यु के बाद भी एक बार यही प्रश्न सामने आया था लेकिन इन्दिराजी ने

उस समय स्वीकार न किया था। चाहती तो वे अब भी न थीं लेकिन भारत की बागडोर सँभालने का दायित्व आपने सभी के कहने पर अपने ऊपर ले लिया।

इन्दिराजी के प्रधानमन्त्री बनने पर सरोजनी नायडू के वे शब्द साकार हो गये जिन्हें उन्होंने इन्दिराजी के जन्मकाल के समय लिख भेजा था। प्रधानमन्त्री बनने के बाद इन्दिराजी के सामने अनेक समस्याएँ आ खड़ी हुईं। अहिंसा और विश्वास के बल पर इन्होंने उन्हें दूर करने का भरसक प्रयत्न किया।

१० जून १९६६ में श्रीमती इंदिरा गांधी ने त्रिवेन्द्रम का दौरा किया। वहाँ वे प्रथम बार गईं। अपने प्रधानमन्त्री के स्वागत के लिए त्रिवेन्द्रम की जनता उमड़ पड़ी। इसी प्रकार देश के विभिन्न-विभिन्न भागों का देवी इन्दिरा गांधी ने दौरा किया। देश की हालत को अच्छी तरह समझकर इन्होंने एक ऐसा कदम उठाया जिसमे भारत की समस्त समस्याएँ हल हो सके। उन्होंने प्रजा से मिलने का समय भी निर्धारित कर दिया। इनका कहना है कि जनता का दु:ख-दर्द सुनना मेरा परम कर्त्तव्य है। मैं अपनी जनता के दु:खों को दूर करने का सदैव प्रयत्न करती रहूँगी।

प्रधानमन्त्री बनने के बाद इन्दिराजी ने विदेशों का दौरा किया। भारत की प्रतिष्ठा को बढ़ाने हेतु आपने हर जगह अपनी कुशलता का अद्भुत परिचय दिया। जहाँ भी आप गईं वहाँ की जनता ने आपका हार्दिक स्वागत किया।

देवी इन्दिरा गांधी ने २४ जनवरी १९६६ को प्रधान-मन्त्री का पद ग्रहण करके भारतीय नारी का गौरव बढ़ाया है। इतना ही नहीं इन्होंने झाँसी की रानी की परम्परा को दोहराया है। देखा जाय तो झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई की

जन्मतिथि भी वही थी जो इन्दिराजी की है। देश पर यदि कोई विपत्ति पड़ी तो यह निश्चय है कि देवी इंदिरा गांधी भी लक्ष्मीबाई की तरह अपना कौशल दिखायेंगी।

धैर्य, आस्था और कर्म-पथ पर डटे रहने में इन्दिराजी दृढ़ हैं। पिता की भाँति हर कार्य को विश्वास के साथ सहर्ष करने का इन्दिराजी प्रयत्न करती हैं।

इन्दिराजी नई पीढ़ी की प्रतिनिधि हैं। नई पीढ़ी की आशा और विश्वास को लिए वे अपने पथ पर दृढ़ है। राष्ट्र को 'राष्ट्र की बेटी' इन्दिराजी से बहुत कुछ आकाँक्षा है और विश्वास है कि जिस प्रकार फूलों का मार्ग छोड़कर वे काँटों के मार्ग पर उतरीं, देश को स्वतन्त्र कराने में अपना पूर्ण योग प्रदान किया, उसी प्रकार अपने राष्ट्र को उन्नति की ओर अग्रसर करने में सदैव अग्रणी हैं और भविष्य में भी रहेंगी। लोकतन्त्रात्मक और समाजवाद के पथ पर देश को अग्रसर करने की हार्दिक इच्छा लिए इन्दिराजी पूर्ण निष्ठा से अपना कर्तव्य निबाह रही हैं। वे बड़े राष्ट्र की प्रधानमन्त्री हैं लेकिन स्वयं को वे प्रधानमन्त्री न कहकर राष्ट्र की सेविका कहती हैं। उनका कहना है कि राष्ट्र की सेवा से बढ़कर कोई सेवा नहीं है। जिस देश की मिट्टी में पलकर बड़ी हुई हूँ, उसकी रक्षा करना मेरा परम कर्तव्य है।

देवी इन्दिरा में ऊँच-नीच की भावना नहीं है। वह सभी को समान दृष्टि से देखती हैं। निर्धनों से इन्हें अधिक स्नेह है। वे चाहती हैं कि भारत का प्रत्येक नागरिक सम्मान और खुशी से अपना जीवन व्यतीत करे। पारस्परिक स्नेह की भावना को वे अधिक महत्व देती हैं। उनका कहना है कि हमें समाज में

एक होकर रहना चाहिए। एकता में बल है। यदि हम आपस में ही लड़ते रहेंगे तो हमारी एकता की शक्ति कमजोर हो जायेगी और फिर कोई भी दुश्मन हमारी पारस्परिक फूट से लाभ उठाकर हमें दबोच लेगा।

उनका यह कहना यथार्थ है। यदि देश का प्रत्येक नागरिक चाहे वह हिन्दू हो या मुसलमान, सिख हो या ईसाई, आपस में सहानुभूति पूर्वक रहकर एकता की डोर में बँधा रहेगा तो दुनिया की बड़ी-से-बड़ी शक्ति भी उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकती। इतिहास में ऐसे बहुत से उदाहरण सामने आये हैं। यदि हम भारत के इतिहास को उठाकर देखें तो हमें ज्ञात होता है कि जब भी देश गुलाम हुआ आपसी मतभेद तथा फूट के कारण ही हुआ। दुश्मनों ने पारस्परिक फूट का लाभ उठाकर बड़े-बड़े राज्य तबाह किए, मुल्क बरबाद किये। अंग्रेजों ने भी जब भारता पर अधिकार किया, अन्दरूनी फूट को देखकर वर्ना भारत की पवित्र धरती पर अंग्रेज कभी भी हुकूमत न कर सकते थे। भारतीय इतिहास को सामने रखकर ही इन्दिरा जी एकता में अधिक विश्वास रखती है।

इतना ही नहीं देश की उन्नति के लिए देवी इन्दिरा ने हर पहलू पर विचार किया है। देश की गरीबी को दूर करने के लिए इन्होंने बहुत-सी योजनाएँ चलाई है जिससे हर व्यक्ति को काम मिल सके। जहाँ तक सामाजिक सुधार करने का देवी इन्दिरा ने बीड़ा उठाया है वहाँ उन्होंने देश की पैदावार, आर्थिक सुधार तथा देश को शक्तिशाली बनाने का भी ठोस कार्य किया है और कर रही है। वे चाहती हैं कि भारत विश्व में उच्चकोटि का सम्मान प्राप्त करे, किसी से पीछे न रहे और

विपत्ति के समय इसे किसी का मुंह न ताकना पड़े। इसी उद्देश्य को सामने रखकर देवी इन्दिरा देश की बागडोर को संभाले हुए हैं।

आज के वैज्ञनिक युग में बड़े-बड़े राष्ट्र अणुशक्ति को बढ़ावा देकर मानव-विनाश के लिए जो अस्त्र-शस्त्र तैयार कर रहे हैं, इन्दिरा जी उसके पक्ष में नहीं हैं। उनका कहना है कि ऐसी शक्ति को अल्प विकसित देशों के लिए अपनाना हानिकारक है, जो कि हिंसा के मार्ग पर ले जाता है। राष्ट्र को उन्नतिशील पथ से दूर कर देता है। इस समस्या को हल करने के लिए इन्होंने हमेशा राष्ट्र के सामने अहिंसा का मार्ग अपनाने पर बल दिया है। क्योंकि वे जानती हैं कि मानव के कल्याण के लिए अगर कोई श्रेष्ठ मार्ग है तो वह अहिंसा और शांति का है। जब से इन्दिराजी प्रधानमंत्री पद पर आसीन हुई हैं तब से उन्होंने ऐसे ही अनेकों रचनात्मक कार्य किये हैं। हमें पूर्ण विश्वास है कि इन्दिराजी के नेतृत्व में राष्ट्र समृद्धशाली होगा। अगर कोई भी आक्रांता हमारे देश पर आक्रमण करने का दु:साहस करेगा तो यह निश्चय है कि इन्दिरा जी झाँसी की रानी की भाँति अपने रूप को दिखाकर ही रहेंगी।

बच्चो ! तुम्हें भी देवी इन्दिरा के जीवन से शिक्षा लेकर अपने जीवन को उन्नति की ओर अग्रसर करना चाहिए। आज तुम नन्हीं-नन्हीं कलियाँ हो। कल तुम्हें फूल बनकर सारे देश को अपनी सुगंध से महकाना है। यही जीवन है जिसमें अच्छी शिक्षा का सागर लहरायेगा और एक दिन तुम भी अपने देश के महान् नेता बनोगे। इसलिए तुम वीर बनो, परस्पर प्रेम से रहकर एकता कायम रखो जिससे भविष्य में अपने देश की स्वतन्त्रता की रक्षा करने में पीछे न रह सको।

राष्ट्र को देवी इन्दिराजी पर गर्व है! राष्ट्र का बच्चा-बच्चा प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी जी के साथ है। उन्हें गर्व है इन्दिराजी पर और इनसे बहुत-सी आशाएँ भी।